राजभाषा भारती

अंक : 99, वर्ष : 25

अक्तूबर-दिसंबर 2002

राजभाषा विभाग गृह मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली

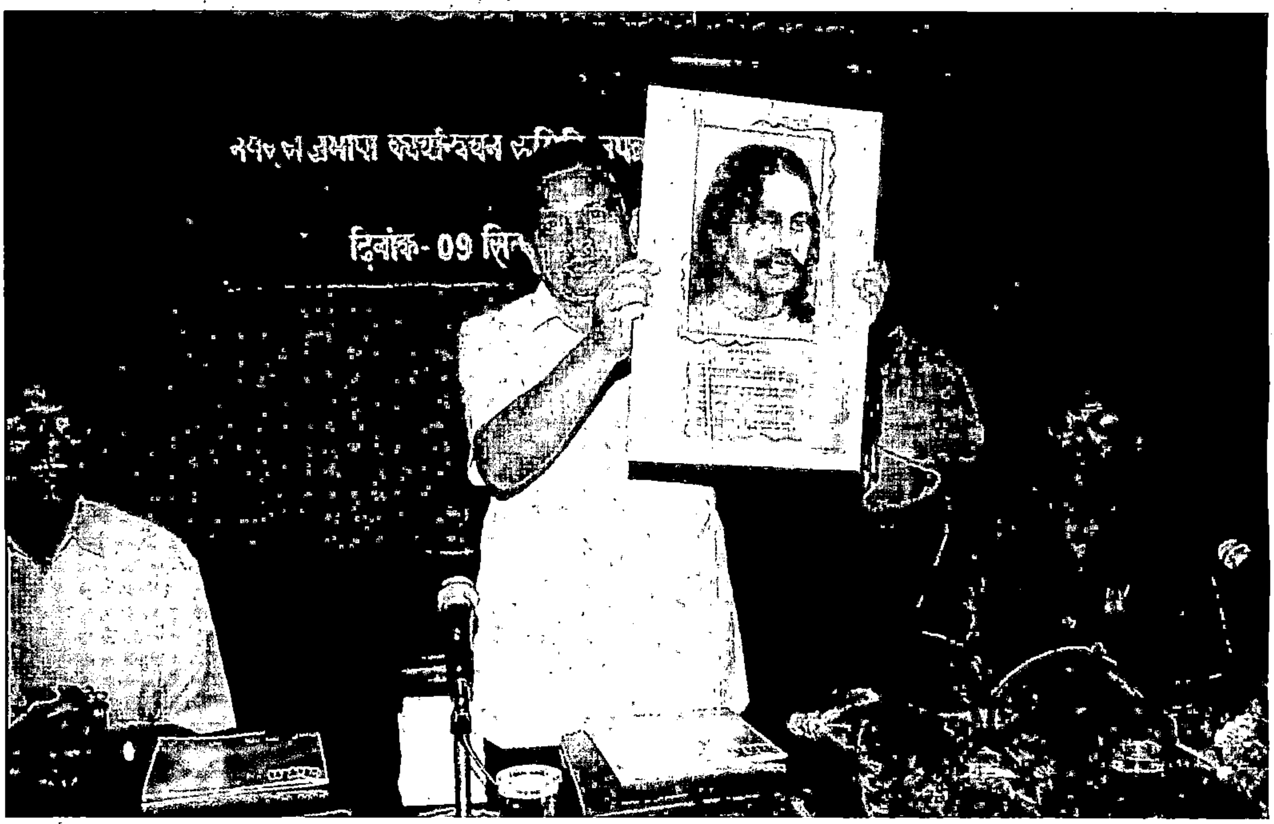

कोलकाता नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक में भारतेन्दु हरिश्चंद्र के पोस्टर का लोकार्पण करते हुए सचिव, राजभाषा विभाग श्री एस.के. टुटेजा।

समिति की बैठक में प्रतिभागियों के समक्ष अपने विचार व्यक्त करते हुए सचिव, राजभाषा विभाग श्री एस.के. टुटेजा।

राजभाषा भारती

राजभाषा भारती

वर्ष : 25

अंक : 99

(अक्तूबर-दिसंबर, 2002)

❑ संपादक (पदेन)
कृष्ण चंद्र श्रीवास्तव
निदेशक/अनुसंधान/
फोन : 24619521

❑ उप संपादक
सुरेन्द्र लाल मल्होत्रा
फोन : 24698054

निशुल्क वितरण के लिए

पत्र व्यवहार का पता
संपादक
राजभाषा भारती,
राजभाषा विभाग,
गृह मंत्रालय ,
दूसरा तल, लोकनायक भवन,
नई दिल्ली-110003

विषय-सूची

लेख का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.
❑ संपादकीय		
❑ लेखों के विषय में		i
→ आचार्य शुक्ल के आलोचनात्मक मूल्य और तुलसी, जायसी, सूर और कबीर का मूल्यांकन	— रुस्तम राय	1
→ तुलसी दास और कंबन के नारी— पात्र: एक तुलनात्मक अध्ययन	— डा. एम. शेषन्	10
→ संघ की राजभाषा के स्वर्ण जयंती वर्ष की प्रतिष्ठा में एक विहंगावलोकन	— डॉ. शिव मंगल सिंह 'सुमन'	19
→ वैशाली : गणंतत्र और गणिका परम्परा	— डॉ. हरिनारायण ठाकुर	23
→ 'सुमन' की सुगंध से महकता रहेगा साहित्य संसार	— कुलदीप कुमार	30
→ अगली सदी का दर्शन	— शंकर शरण	32
→ अरुणाचल प्रदेश का हस्तशिल्प	— डॉ. वीरेन्द्र कुमार सिंह	36
→ समुद्र में कशीदाकारी : प्रवाल भीत्तियां	— बजरंग लाल जेठू	40
→ आयुर्वेद और योग से तनाव-मुक्ति	— डॉ. (श्रीमती) सुरिन्दर कटोच	43
→ आध्यात्मिक कामधेनू है गीता	— डॉ. अतुल टण्डन	45
❑ कविता		
1. आखिरी शयन	— रमानाथ अवस्थी	47
2. कुछ तो फर्ज निभा लो	— श्रीमती विनोद कुमारी पाण्डे	48
3. तीन कविताएं	— राजकुमार कम्बोज	49
4. स्याह करता जा रहा है	— कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव	50
❑ राजभाषा सम्बन्धी गतिविधियां		
आदेश-अनुदेश		53
केंद्रीय हिंदी समिति की 26वीं बैठक		59
शिमला में क्षेत्रीय राजभाषा सम्मेलन का आयोजन		60
विविध समाचार		65

विशेष : पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त किए गए विचार एवं दृष्टिकोण संबन्धित लेखक के हैं। सरकार अथवा राजभाषा विभाग का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपादकीय

नई साज-सज्जा और कलेवर में 'राजभाषा भारती' आपके हाथ में है। इसके लिए हमें राजभाषा विभाग के वर्तमान सचिव श्री सुरेन्द्र कुमार टुटेजा जी से मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। हम उनके आभारी हैं। राजभाषा भारती न तो विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका है और न ही वैज्ञानिक और तकनीकी। हम राजभाषा भारती के माध्यम से भारतीय वांङ्मय की सभी विधाओं चाहे साहित्य हो, विज्ञान हो, तकनीक हो, को स्पर्श करते रहे हैं क्योंकि उनका सीधा या परोक्ष सम्बन्ध राजभाषा हिंदी से है। हिंदी में वैज्ञानिक और तकनीकी लेख जन साधारण के लिए विज्ञान और तकनीक को सहज, सुलभ बनाते हैं और साहित्यिक लेख, कहानियां और कविताएं हमारा स्वस्थ मनोरंजन करते हैं और हमारी संवेदना को प्रशस्त करते हैं।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में हम लेखकों से उनकी मौलिक अप्रकाशित आलेखों की अपेक्षा करते हैं।

राजभाषा नीति के सम्यक् कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है कि राजभाषा कार्मिकों का मनोबल ऊंचा हो। अपेक्षित है कि कार्मिकों को यथासमय पदोन्नति उपलब्ध हो। इसके लिए पांचवें वेतनमान आयोग ने कई सिफारिशें की थीं। सरकार ने अधिकतर सिफारिशें मान लीं। उसके फलस्वरूप केंद्रीय सचिवालय राजभाषा सेवा के संवर्ग पुनर्गठन का काम लगभग पूरा हो गया। लेकिन अधीनस्थ कार्यालयों जहां सचिवालय राजभाषा सेवा नहीं है, उनमें स्थिति अभी भी संतोषजनक नहीं है। उल्लेखनीय है कि केंद्रीय हिंदी समिति की अनुशंसा के अनुसरण में हम सन् 1988 से अधीनस्थ कार्यालयों के हिंदी पदों के संवर्गीकरण के विषय में भी विभिन्न कार्यालयों को लिखते रहे हैं। इसके फलस्वरूप कई कार्यालयों ने अपने हिंदी पदों का संवर्गीकरण कर लिया है। हिंदी पदों के वेतनमानों में अभी भी एकरूपता नहीं है। विभिन्न सरकारी कार्यालयों में कनिष्ठ अनुवादकों के अनेकानेक वेतनमान चल रहे हैं। आवश्यक है कि समान पद के लिए समान वेतन के आधार पर इन पदों का वेतनमान समान किया जाए और इनमें पदोन्नति के समान अवसर उपलब्ध कराए जाएं। इन सभी सवालों पर विचार विमर्श जरूरी है।

लेखों के विषय में

राजभाषा विभाग का सर्वदा यह प्रयास रहा है कि राजभाषा भारती में अर्वाचीन और विभिन्न विधाओं के अत्याधुनिक लेख प्रकाशित किए जाएं ताकि पाठकों का ज्ञानवर्धन हो और उन्हें साहित्य और अन्य विधाओं सम्बन्धी नवीनतम जानकारियां मिलती रहें। 'राजभाषा भारती' के इस अंक को नए कलेवर और नई साजसज्जा में प्रकाशित करने के साथ-साथ इसमें ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न विधाओं से सम्बन्धित जाने माने साहित्यकारों और प्रतिष्ठित विद्वानों के लेख संकलित किए गए हैं।

आचार्य शुक्ल के आलोचनात्मक मूल्य और तुलसी, जायसी, सूर और कबीर का मूल्यांकन लेख में लेखक ने यह उद्घाटित किया है कि शुक्ल जी की लोकमंगल भावना के भीतर कबीर, तुलसी और जायसी सभी एक ही भूमि पर नहीं खड़े हैं। इन सबमें ऊंची भूमि पर खड़े हैं तुलसीदास जी। लेख में यह निरूपित किया गया है कि सामाजिक असमानता और जातपात के भेदभाव पर टिकी हुई समाज-व्यवस्था और उसकी रक्षा करने वाली मर्यादाओं का विरोध निर्गुण संतों के काव्य में है। वही तुलसीदास को असह्य लगता है और रामचन्द्र शुक्ल को लोकविरोधी क्योंकि कबीर की रचनाएं शुक्ल जी के लोक मंगल के दायरे में नहीं हैं।

डॉ. ए. शेषन के लेख 'तुलसी और कंबन के नारी पात्रः एक तुलनात्मक अध्ययन' में नारी पात्र मानव स्वभाव की विविधताओं और जीवन की वास्तविकताओं तथा आदर्शों को प्रस्तुत करने वाले हैं। लेखक ने निरूपित किया है कि तुलसी और कंबन दोनों ने ही अपने ग्रंथों में नारी पात्रों के द्वारा भारत की नारियों के लिए अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

स्वर्गीय डा. शिवमंगल सिंह 'सुमन' अब नहीं रहे। वे हिंदी जगत के एक मूर्धन्य तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकार थे। 'राजभाषा भारती' के स्वर्ण जयंती विशेषांक में उनके लेख 'संघ की राजभाषा के स्वर्ण जयन्ती वर्ष की प्रतिष्ठा में एक विहंगावलोकन' लेख प्रकाशित किया गया था। उनके स्मरण में इस अंक में उस लेख की पुनरावृत्ति की जा रही है।

डॉ. हरि नारायण ठाकुर के लेख 'वैशाली गणतंत्र और गणिका परम्परा' में ऐतिहासिक और रोचक सूचनाएं उपलब्ध हैं।

कुलदीप कुमार ने 'सुमन' की सुगंध से महकता रहेगा साहित्य संसार में सुमन को एक प्रगतिशील विचारधारा का महान कवि बताया है। कवि की प्रसिद्धि इसी तथ्य से आंकी जा सकती है कि स्वयं प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने लाल किले से अपने पहले संबोधन में उनकी कविता के कुछ अंश पढ़े थे।

इस अंक में सम्मिलित शंकर शरण का लेख 'अगली सदी का दर्शन', डॉ. वीरेन्द्र कुमार सिंह का लेख 'अरुणाचल प्रदेश का हस्तशिल्प', बजरंग लाल जेठू का लेख 'समुद्र में कशीदाकारी : प्रवाल भीत्तियां', डॉ. सुरिन्दर कटोच का लेख 'आयुर्वेद और योग से तनावमुक्ति', डॉ. अतुल टण्डन का 'आध्यात्मिक कामधेनु है गीता' अत्यधिक ज्ञानवर्धक और सूचनाप्रद हैं, जिनसे निश्चित ही पाठकों का ज्ञानवर्धन होगा, ऐसी हमारी आशा है।

—उप सम्पादक

आचार्य शुक्ल के आलोचनात्मक मूल्य और तुलसी, जायसी, सूर और कबीर का मूल्यांकन

—रुस्तम राय

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के आलोचनात्मक मूल्यों के निर्माण में उनके जीवन मूल्यों का योग है तो दूसरी तरफ उन मूल्यों की निर्माण प्रक्रिया में तुलसी साहित्य की रचनाशीलता की सर्वाधिक सक्रियता रही है। यही कारण है कि शुक्ल जी निर्गुण के बदले सगुण, ज्ञान और प्रेम से अधिक धर्म और लोकधर्म, लोकरंजन से अधिक लोकरक्षा आदि पर विशेष बल देते हैं। उनके लिए भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है और धर्म की यह रसात्मक अनुभूति ही उनके काव्यमूल्य लोकमंगल की धारणा है। उनका लोकमंगल रसदशा और हृदय की मुक्तावस्था के साथ लोकहृदय में लीन होने की दशा भी है। लोकमंगल एक ओर "विरोधों के सामंजस्य" पर बल देता है तो दूसरी ओर काव्य में मंगल और सौंदर्य की सृष्टि करता है और यह सृष्टि प्रयत्न, कर्म और संघर्ष के मेल से संभव होती है। तभी तो मनुष्यता की रक्षा में कविता की सार्थकता निहित होती है। कविता की इसी सार्थकता के लिए शुक्ल जी वास्तविकता के आधारों की खोज करते हैं। उनकी यह वास्तविकता यथार्थपरकता की ओर उन्मुख और जीवन की सच्ची और मार्मिक परिस्थितियों के चित्रण की ओर अग्रसारित है। अपनी दृष्टि की इसी यथार्थपरकता के कारण शुक्ल जी यदि एक ओर रहस्यवाद, अध्यात्मवाद और परलोकवाद जैसी धारणाओं का खण्डन करते हैं तो दूसरी ओर भारतीय काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों विशेषकर रस की युगानुकूल एवं मनोवैज्ञानिक व्याख्या कर उसे लौकिकता की भूमि पर प्रतिष्ठित कर पाते हैं। आगे हम शुक्ल जी द्वारा जायसी, सूर और तुलसी की व्यावहारिक आलोचनाओं की उपर्युक्त पृष्ठभूमि में ही देखने-परखने का लघु प्रयास करेंगे।

आचार्य शुक्ल ने जायसी ग्रंथावली की भूमिका में जायसी की कविता के भावात्मक एवं कलात्मक उत्कर्षापकर्ष का विशद आलोचनात्मक आकलन किया है। उनकी इस आलोचना में इतिहास, अनुसंधान और भाषा का सुन्दर सम्मिलन हुआ है। इसीलिए, शायद डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है कि "जायसी की भूमिका शुक्ल जी की बहुत ही शानदार आलोचना कृतियों में से है। लगता है, इसे उन्होंने प्रेम से फुर्सत में बैठकर लिखा है। उनकी विद्वता, आत्मविश्वास, वैज्ञानिक अनुसंधान अपने सबसे निखरे रूप में यहां दिखाई देते हैं। यहाँ शुक्ल जी ने एक ऐसे कवि को, जिसे हिंदी के पाठक बहुत कम जानते थे, तुलसीदास के बाद हिंदी का श्रेष्ठ कवि घोषित किया है।"[30] शर्मा जी के अनुसार शुक्ल जी द्वारा जायसी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, दार्शनिक विचार, कलात्मक मूल्यों आदि का विवेचन हिंदी के अनुसंधान साहित्य में एक नए अध्याय का सूत्रपात करता है। इसी क्रम में जायसी ग्रंथावली की भूमिका के महत्व पर प्रकाश डालते हुए डा० रामलाल सिंह ने लिखा है कि "इस समीक्षा कृति में शुक्ल जी ने रस की सीमा के भीतर ऐतिहासिक प्रवृत्ति, युगाचेतना, सांस्कृतिक तत्व शीलदशा तथा दार्शनिक तत्वों को सन्निहित कर रस की वस्तुभूमि को विस्तृत करने का प्रयत्न किया है। इस भूमिका में शुक्ल जी ने संस्कृत तथा भाषा साहित्य के सिद्धांतों की ही नहीं वरन् अंग्रेजी, ग्रीक तथा फारसी साहित्य के सिद्धांतों को जायसी साहित्य की समीक्षा में प्रयुक्त करके फारसी, अंग्रेजी, अरबी, उर्दू, संस्कृत तथा हिंदी कवियों से जायसी की तुलना करके तथा एशिया एवं यूरोप के विभिन्न दार्शनिक मतों से जायसी के दर्शन एवं मत की तुलना करके हिंदी साहित्य को विश्व साहित्य की भूमि पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है।"

जायसी ग्रंथावली की भूमिका में शुक्ल जी ने अपनी विस्तृत आलोचना में जायसी के जीवनवृत्त, प्रेमगाथा की परम्परा, पद्मावत की कथा और उसका ऐतिहासिक आधार, पद्मावत की प्रेम पद्धति, उसका संयोग और वियोग पक्ष, प्रेम तत्व और उसकी ईश्वरोन्मुखता, प्रबंध कल्पना और संबंधनिर्वाह, वस्तुवर्णन और भावव्यंजना, अलंकार और स्वभाव चित्रण, मत और सिद्धान्त, जायसी का रहस्यवाद, सूक्तियां और फुटकल प्रसंग एवं भाषा संबंधी विस्तृत एवं गहन विवेचन और विश्लेषण किया है। भूमिका के प्रारम्भ में ही शुक्ल जी ने मध्यकालीन भक्ति साहित्य के परिदृश्य पर जायसी के आगमन से पूर्व की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि "सौ वर्ष पूर्व कबीरदास हिंदू और मुसलमान दोनों के कट्टरपन

3841 HA/02—2

को फटकार चुके थे। पंडितों और मुल्लाओं की तो नहीं कह सकते पर साधारण जनता राम और रहीम की एकता मान चुकी थी।''[31] शुक्ल जी यहां हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रबल पक्षधर प्रतीत होते हैं और ऐसा लगता है कि वे हिंदू-मुस्लिम एकता को आवश्यक भी समझते थे। इसीलिए उन्होंने आगे लिखा है कि ''बहुत दिनों तक एक साथ रहते हुए हिंदू और मुसलमान एक दूसरे के सामने अपना-अपना हृदय खोलने लग गए थे, जिससे मनुष्यता के सामान्य भावों के प्रवाह में मग्न होने और मग्न करने का समय आ गया था। जनता की प्रवृत्ति भेद से अभेद की ओर हो चली थी।''[32] उपर्युक्त इन्हीं परिस्थितियों में जायसी भक्तिकाव्य के व्यापक परिदृश्य पर प्रकट होते हैं। शुक्ल जी यह मानने में चूक नहीं करते हैं कि ''इन कवियों ने दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूपरंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है।''[33] जायसी ''प्रेम की पीर'' की कहानियां लेकर साहित्य क्षेत्र में उतरे थे। उन्होंने इन कहानियों के द्वारा प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक प्रभाव दिखाई पड़ता है। आचार्य शुक्ल ने यह पहचाना कि कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता थी। वह जायसी द्वारा पूरी हुई।[34]

जायसी के बारे में शुक्ल जी का यह कथन ध्यान देने योग्य है कि ''जायसी कवि थे और भारतवर्ष के कवि थे।'' उनकी यह उक्ति जायसी के महत्व को निर्विवाद रूप में सिद्ध करती है। उन्होंने ऐसा प्रयोग शायद ही किसी और कवि के लिए किया हो। जायसी के ''पद्मावत'' को वे ''हिंदी'' साहित्य का एक जगमगाता हुआ रत्न कहते हैं। यह भी आकस्मिक नहीं है कि वे प्रबंध काव्य के तीन विभाग करते हुए ''पद्मावत'' को प्रेमगाथा के रूप में अव्वल दर्जे का महाकाव्य घोषित करते हैं। उनकी इन उपर्युक्त मान्यताओं का महत्व तब और बढ़ जाता है जब हम पाते हैं कि उनके पूववर्ती आलोचक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और मिश्रबंधु सूर, तुलसी और कबीर की ओर तो ध्यान दे सके परन्तु जायसी उपेक्षित रह गए। यहां तक मिश्रबंधुओं ने उन्हें ''हिंदी नवरत्न'' में जगह देने के लायक न समझा। परन्तु शुक्ल जी की दृष्टि में जायसी की कुछ और भी विशेषताएं हैं। जायसी में भावों की उदारता है जिसके कारण व्यक्तिगत साधना की उच्च भूमि पर खड़े होकर भी वे लोकरंजन और लोकरक्षा के आदेशों को प्रेम ओर सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। यही कारण है कि जायसी विधिविरोध, विद्वानों की निंदा और अनधिकार चर्चा करके समाज में विद्धेष नहीं फैलाते। सबसे बड़ी बात यह है कि जायसी ने कबीर और सूर की तरह पदों और गीतों की रचना नहीं की है बल्कि तुलसी की तरह महाकाव्य लिखा है।

आचार्य शुक्ल के अनुसार अद्वैतवाद महज एक दार्शनिक सिद्धांत है, जिसका कवि कल्पना या भावना से कोई संबंध नहीं होता, परन्तु जब उसी का भाव क्षेत्र में संचार होता है तब उच्चकोटि के भावात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है। भावात्मक और साधनात्मक में दो तरह के रहस्यवाद होते हैं। शुक्ल जी लिखते हैं—''हिंदी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुन्दर रहस्यवाद है तो जायसी में जिनकी भावुकता बहुत ही ऊंची कोटि की है।'' जायसी को इस जगत के नाना रूपों में उसी प्रियतम के रूप-माधुर्य की छाया दिखाई पड़ती है। इसीलिए शुक्ल जी ने उनके ईश्वरोन्मुख प्रेम के विषय में लिखा है ''क्या संयोग क्या वियोग दोनों में कवि प्रेम के उस आध्यात्मिक स्वरूप का आभास देने लगता है, जगत के समस्त व्यापार जिसके छाया से प्रतीत होते हैं।'' अकारण नहीं है कि शुक्ल जी को जायसी की भक्ति भारतीय लगती है। जायसी के प्रेम में अलौकिता है तो लौकिकता भी है। उनकी यह विशेषता है कि अलौकिक प्रेम को भी लौकिक धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं। फिर भी शुक्ल जी को यह बात खटकती है कि जायसी लौकिक और अलौकिक प्रेम को एक ही जगह व्यंजित करने का प्रयत्न करते हैं।[36] बावजूद इसके जायसी के प्रेम के लोकपक्ष की तारीफ करते हुए शुक्ल जी कहते हैं कि ''जायसी एकांतिक प्रेम की गूढ़ता और गम्भीरता के बीच-बीच में जीवन के और अंगों के साथ भी उस प्रेम के संपर्क का स्वरूप कुछ दिखाते गए हैं। इससे उनकी प्रेमगाथा पारिवारिक और सामाजिक जीवन से विच्छिल होने से बच गई है।'' शुक्ल जी बार-बार इस सचाई की ओर संकेत करते हैं कि जायसी के ''पद्मावत'' की प्रेमपद्धति भारतीय साहित्य में वर्णित दाम्पत्य पद्धति के अनुकूल है। चूँकि इस प्रेम का विकास लोकजीवन के बीच हुआ है, इसलिए वह बिल्कुल एकांतिक नहीं है और न तो लोकपक्ष से ही शून्य है। आकस्मिक नहीं है कि ''पद्मावत'' की भाव-व्यंजना दरवारी कवियों से भिन्न कोटि की है। वास्तव में जायसी प्रेम और शृंगार के कवि हैं और उनके प्रेम वर्णन का आधार यहाँ की जनसंस्कृति है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि जायसी भारतीय जनसंस्कृति के कवि हैं और इसीलिए आचार्य शुक्ल ने उन्हें भारतीय का कवि कहा है।

शुक्ल जी के अनुसार जायसी का विरह वर्णन अत्युक्तिपूर्ण होते हुए भी उसमें गांभीर्य है। इसीलिए उन्होंने नागमती के विरह वर्णन को हिंदी में अद्वितीय कहा है। उन्होंने जायसी के विरह वर्णन की अद्वितीयता बिहारी और उर्दू शायरों के विरह वर्णनों से तुलना करके सिद्ध की है। जायसी का विरह वर्णन भारतीय पद्धति के अनुकूल है। नागमती के विरह वर्णन में "बारहमासें" का प्रयोग है जिसमें कवि ने अपनी भावुकता का परिचय इस बात में दिया है कि नागमती विरह दशा में अपना रानीपन भूलकर एक साधारण स्त्री की तरह व्यवहार करती है।

वैसे तो "पद्मावत" में वियोगवर्णन की प्रधानता है, परन्तु संयोग का भी पर्याप्त वर्णन हुआ है। षड्ऋतुवर्णन में संयोग श्रृंगार का सुंदर वर्णन है। शुक्ल जी मानते हैं कि जायसी ने संभोग श्रृंगार की रीति के अनुसार अभिसार का पूरा वर्णन किया है। वैसे पद्मावती के समागम की कुछ पंक्तियां अश्लील भी हो गई हैं, परन्तु कवि ने सर्वत्र प्रेम के भावात्मक रूप को ही प्रधानता दी है।

आचार्य शुक्ल ने "पद्मावत" पर प्रबंधकाव्य की दृष्टि से विचार करते हुए कथानक के मर्मस्पर्शी स्थलों की पहचान, घटनाओं की संबंध श्रृंखला, कथा की गतिशीलता और मानव जीवन की व्यापकता एवं विविधता पर भी गंभीरतापूर्वक चिन्तन किया है। उन्होंने "पद्मावत" की कथा के गठन की विशेषता की ओर संकेत किया है। "पद्मावत" की कथा की विशेषता है कि कवि घटनाओं को आदर्श परिणाम तक पहुंचाने का अनावश्यक प्रयास नहीं करता बल्कि कथा को उसकी स्वाभाविक परिणति पर छोड़ देता है। शुक्ल जी कथावस्तु के संबंधनिर्वाह की जाँच भी यथार्थपरकता के आधार पर करते हैं परन्तु वे यह बताना भी नहीं भूलते कि जायसी में वर्णन की नई पद्धति की उद्भावना की शक्ति नहीं है। इसीलिए उन्होंने लिखा है कि "जायसी के कथा-प्रवाह में इस प्रकार के अनावश्यक विराम बहुत से हैं। बहुत स्थलों पर तो ऐसा विराम कुछ दिनों से चली हुई, उस भद्दी वर्णन परम्परा का अनुसरण है जिसमें वस्तुओं बहुत से नाम और भेद गिनाए जाते हैं।"[37] परन्तु डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी शुक्ल जी की इस स्थापना से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार शुक्ल जी की सजग दृष्टि कवि के रचना विधान को समझने में यहां चूक गई है। यदि इस विधान को ध्यान से देखा जाए तो स्पष्ट होगा कि इस प्रकार के वर्णनों की योजना वस्तुत: लोक परम्परा के आग्रह से है।[38]

शुक्ल जी ने जायसी के पात्रों की भावव्यंजना की परीक्षा उनके भावोत्कर्ष और अन्त: प्रकृति की पहचान करते हुए की है। वहीं पर उन्होंने चरित्र चित्रण के प्रसंग में व्यक्ति और वर्ग की एकता की माँग दुहराई है। उन्होंने रत्नसेन, पद्मावती, नागमती, राघवचेतन आदि के चरित्रों को भारतीय समाज की वास्तविकता और उसमें व्याप्त स्वाभाविकता के धरातल पर जाँचा-परखा है।

शुक्ल जी ने जायसी की भाषा संबंधी अपना विवेचन-विश्लेषण काफी गम्भीरता से किया है। उनके इस विवेचन में उनका भाषा वैज्ञानिक रूप अधिक प्रखरता लिए हुए है। फिर भी उन्होंने जायसी की भाषा के काव्य सौष्ठव को बड़ी बारीकी और बेवाकीपन के साथ उद्घाटित करते हुए लिखा है कि "जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है पर उसका माधुर्य निराला है। वह माधुर्य "भाषा" का माधुर्य है, संस्कृत का माधुर्य नहीं। वह संस्कृत के कोमलकांत पदावली पर आवलंबित नहीं। उसमें अवधी अपनी निज की स्वाभाविक मिठास लिए हुए है।"[39] शुक्ल जी के अनुसार जायसी ने अंलकारों का प्रयोग अनुभूति की तीव्रता, भाव-सौंदर्य की समृद्धि, कल्पना की रचनाशीलता और रसानुकूलता की वृद्धि के लिए किया है। जायसी ने भारतीय अलंकारों के साथ पाश्चात्य अंलकारों का भी सुंदर प्रयोग किया है और उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग के साथ "बिम्बग्रहण" कराने पर भी जोर देते हैं।

निष्कर्षस्वरूप हम पाते हैं कि आचार्य शुक्ल ने जायसी की काव्यगत विशेषताओं के रूप में जहां विशुद्ध प्रेममार्ग का विस्तृत प्रत्यक्षीकरण प्रेम की अत्यंत व्यापक और गूढ़ व्यंजना, मर्मस्पर्शिनी भाव-व्यंजना, प्रबंध सौष्ठव, प्रस्तुत अस्प्रस्तुत का सुंदर समन्वय और ठेठ अवधी के माधुर्य की चर्चा की है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने बेखटके कवि के वर्णन की प्रचुरता, पुनरूक्ति, अरोचक और अनपेक्षित प्रसंगों का संनिवेश, अनुचितार्थ, न्यूनपदत्व और च्युत संस्कृति जैसे दोषों की भी उद्भावना की है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का यह अभिमत है कि जायसी के समय तक जो सामान्य जनता राम और रहीम की एकता पहचान चुकी थी, सूरदास के समय तक आते-आते उसी जनता पर गहरी उदासी छा गई। जनता की उस गहरी उदासी और मुरझाए हुए मन को हरा करने के लिए "जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूष-धारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरसता में परिणित होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कण्ठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुंजों के बीच फैले मुरझाए मनों को सींचने लगी। आचार्यो की

छाप लगी हुई आठ वीणाएं श्री कृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊंची, सुरीली और मधुर झंकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी।[40] परन्तु प्रसिद्ध आलोचक डॉ० रामविलास शर्मा ने शुक्ल जी की उपर्युक्त स्थापनाओं से अपनी असहमति व्यक्त की है। रामविलास जी की मान्यता है कि ''शुक्ल जी ने सूर की कृष्ण भक्ति का संबंध उचित ही जयदेव और विद्यापति से जोड़ा है। परन्तु जायसी कृष्णभक्त न थे लेकिन सूर की तरह वह भी प्रेम के कवि थे। इसलिए न तो सूर के प्रेमगीतों का कारण यह हो सकता है कि लोग कृष्ण का वीर रूप भूल गए थे और न उन गीतों का यह परिणाम हो सकता था कि मुर्झाया हुआ हिंदू जीवन फिर लहलहा उठा। यदि मुर्झाए हुए जीवन के लिए सूर के गीतों की आवश्यकता पड़ी तो यही कारण जायसी के काव्य का भी हो सकता था। क्योंकि जायसी और सूर एक ही समाज या एक से ही समाज के प्राणी थे।''[41]

शुक्ल जी ने सूरदास की वीणा की मधुर झंकार को व्याख्यायित एवं विश्लेषित करने का कार्य अपने ''सूरदास'' नामक ग्रंथ में किया है। उन्होंने सूर और उनकी कविता के संबंध में अपने आलोचनात्मक विचारों को ''भ्रमरगीत सार'' की भूमिका में भी व्यक्त किया है। वास्तव में उनकी ''सूरदास'' नामक पुस्तक भी भ्रमरगीत सार की भूमिका का ही संशोधित एवं परिवर्धित रूप है। इसमें ''सूरदास का जीवनवृत्त'', ''भक्ति का विकास'', ''श्री वल्लभाचार्य'' और परिशिष्ट की सामग्री अलग से जोड़ी गई है। डा० मैनेजर पाण्डेय ने शुक्ल जी की सूर संबंधी आलोचना की विशेषताओं की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि ''आचार्य शुक्ल की आलोचना से सूर की कविता के विशिष्ट स्वरूप की पहचान की शुरूआत हुई। उन्होंने सूर की सहृदयता, कल्पनाशीलता, तन्मयता, नवीन प्रसंगों की उद्भावना शक्ति, ''वाग्विदग्धता'' और काव्य भाषा की अपूर्व सृजनशीलता की व्याख्या करते हुए सूर-साहित्य की आलोचना का मार्ग बनाया।''[42] फिर भी आचार्य शुक्ल की यह अतिशय विनम्रता ही है कि उन्होंने भ्रमरगीत सार की भूमिका के अन्त में लिखा कि ''यहां सूर के संबंध में कुछ विचार संक्षेप में प्रकट किए गए हैं। आशा है विस्तृत आलोचना का अवसर कभी मिलेगा।''[43] परन्तु उन्हें वह अवसर कभी नहीं मिला।

''भक्ति का विकास'' नामक अध्याय में शुक्ल जी ने भक्ति के विकास को भारतीय समाज और संस्कृति के ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया के रूप में देखा है। उनके इस भक्ति संबंधी विवेचन की विशेषता यह है कि वे ईश्वरीय सत्ता के बदले प्रत्यक्ष जगत की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं। वे ईश्वर, धर्म और भक्ति की धारणाओं की समझ के लिए एक बुद्धिवादी दृष्टिकोण विकसित करते हुए भक्ति और ज्ञान तथा सगुण और निर्गुण में समन्वय स्थापित करने का प्रयास करते हैं। उनका मत है कि ज्ञान प्रसार के भीतर ही भक्ति होती है। जहां तक हम ईश्वर को जान पाते हैं, वहीं तक उसकी भक्ति कर सकते हैं। इसीलिए उन्होंने भक्त की अनुभूति को लौकिक धरातल प्रदान करते हुए रसानुभूति के रूप में विवेचित किया है। उनके अनुसार ''भक्ति की अनुभूति वही है जिसे काव्य की लीनता या ''रस प्रतीति'' कहते हैं। प्रक्रिया भी वही स्वाभाविक और सीधी-सादी है। कल्पना या भावना, जिससे विज्ञान का भीतरी साक्षात्कार होता है और भाव या रागात्मिका वृत्ति जिससे आनंदानुभूति होती है, दोनों मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियां हैं। बस इन्हीं दो स्वाभाविक वृत्तियों के सहारे भक्तिरस की निष्पत्ति हो जाती है।''[44] यही कारण है कि शुक्ल जी रहस्यवाद, अध्यात्मवाद और परलोकवाद का विरोध करते हैं तथा उन्हें विज्ञानविरोधी घोषित करते हैं और यह भी अकारण नहीं है कि उनके भक्ति संबंधी विवेचन में बुद्धिवाद का प्रबल आग्रह दिखाई पड़ता है। आचार्य शुक्ल की भक्ति संबंधी उपर्युक्त धारणाओं की पृष्ठभूमि में ही उनके सूरदास के काव्य के मूल्यांकन को देखा जाना चाहिए।

सूरदास ने काव्य विषय के रूप में वात्सल्य और शृंगार को चुना। उनके पदों में श्री कृष्ण की बाल लीलाओं और गोपियों के संयोग एवं वियोग, ''शृंगार'' का वर्णन है। शुक्ल जी के अनुसार ''वात्सल्य'' और ''शृंगार'' के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आंखों से किया, उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का वे कोना-कोना झांक आए। उक्त दोनों रसों के प्रवर्तक रतिभाव के भीतर की जितनी मानसिक वृत्तियों और दशाओं का अनुभव और प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके, उतनी का और कोई नहीं।''[45] शुक्ल जी की यह दृढ़ मान्यता है कि सूरदास ने जितने विस्तृत और विशद रूप में कृष्ण के बाल्य जीवन का चित्रण किया है उतने विस्तृत रूप में और किसी कवि ने नहीं किया। उन्हें कृष्ण और गोपियों के प्रेम का विकास भी सहज और स्वाभाविक लगता है। इसीलिए उन्होंने लिखा है कि ''बालक्रीडा के सखा—सखी यौवन—क्रीडा के सखा—सखी बन जाते हैं। बाल-क्रीडा क्रमशः यौवन-क्रीडा में परिणत हो जाती है। रूप का आकर्षण बाल्यावस्था से ही आरंभ हो जाता है।''[46] इसीलिए उन्हें ''सूरसागर'' ''रससागर'' लगता है और वे उसमें व्यंजित प्रेम की सान्द्रता और कलात्मकता को ब्रज की लोक संस्कृति और लोक परम्परा का अभिन्न

अंग मानते हैं। एक प्रकार से ''सूरसागर'' जनसंस्कृति का ही विकास है। शुक्ल जी इस सच्चाई की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लिखते हैं कि ''इन पदों के संबंध में सबसे पहली बात ध्यान देने की यह है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक रचना होने पर भी ये इतने सुड़ौल और परिमार्जित हैं। यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियां सूर की जूठी-सी जान पड़ती हैं। अत: ''सूरसागर'' किसी चली आती हुई गीतकाव्य परम्परा का—चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्ण विकास—सा प्रतीत होता है।''[47]

सूरदास के शृंगारवर्णन में संयोग और वियोग दोनों दशाओं की प्रचुरता है। गोपियों और श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं और गोचारण के मनोहर दृश्यों के बीच उनका हंसता खेलता प्रेम विकसित होता है। इसीलिए शुक्त जी की मान्यता है कि ''सूर का संयोग वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं हैं, प्रेम संगीतमय जीवन की एक गहरी चलती धारा है, जिसके अवगाहन करने वाले को दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं दिखाई पड़ता।'' सूरदास द्वारा वर्णित इस प्रेम का महत्व इस बात में है कि खेल ही खेल में इतनी बड़ी बात हो जाती है और पता तक भी नहीं चलता। यदि ऐसा प्रेम जीवनोत्सव बन जाए तो आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि यह सहसा उठ खड़े हुए तूफान या मानसिक विप्लव के रूप में हमारे सामने नहीं आता। शुक्ल जी को प्रेम का यही रूप पसंद है जिसकी वे बार-बार सराहना करते हुए नहीं थकते। इसलिए वे इस सत्य की ओर संकेत करते हैं कि ''प्रेम नाम की मनोवृति का जैसा विस्तृत और पूर्णपरिज्ञान सूर को था वैसा और किसी कवि को नहीं। इनका सारा संयोग वर्णन लम्बी-चौड़ी प्रेम चर्चा है जिसमें आनंदोल्लास के न जाने कितने स्वरूपों का विधान है। रासलीला, दानलीला, मानलीला इत्यादि सब उसी के अंतर्भूत हैं। पीछे देव कवि ने एक ''अष्टयाम'' रचकर प्रेमचर्चा दिखाने का प्रयत्न किया, पर वह अधिकतर घर के भीतर के योगविलास की कृत्रिम दिनचर्चा के रूप में है। उसमें न तो वह अनेकरूपता है और न प्राकृतिक जीवन की उमंग।''[49] शुक्ल जी ने यहां सूर के प्रेम वर्णन की तुलना देव के प्रेम वर्णन से करते हुए यह दिखाया है कि सूर के प्रेम वर्णन में जहां अनेकरूपता और प्राकृतिक जीवन की उमंग है वहीं देव के प्रेम वर्णन में महज भोगविकास की कृत्रिम दिनचर्या है। सूर का प्रेम वर्णन उन्हें इसलिए भी प्रिय है कि उनका प्रेम व्यापार जीवन व्यापार से जुड़ा है।

सूरदास के संयोग वर्णन की तरह उनके वियोग वर्णन की विशेषताओं की पहचान भी आचार्य ने की है। सूर का वियोग वर्णन उनके संयोग वर्णन की तरह ही व्यापक और विस्तृत है। शुक्ल जी ने सूर के वियोग वर्णन की विशेषता बतलाते हुए लिखा है कि ''वियोग की जितनी अंतर्दशाएं हो सकती हैं, जितने ढंगों से उन दशाओं का साहित्य में वर्णन हुआ है और हो सकता है। वे सब उसके भीतर मौजूद हैं। वन-वन ढूंढने पर भी वियोग में व्याकुल गोपियों को कृष्ण दिखाई नहीं पड़ते। उनकी आंखों से निसिदिन आंसुओं की वर्षा होती है तो दूसरी ओर पपीहा भी उनके दुख को बढ़ाता हुआ प्रतीत होता है। शुक्ल जी के लिए सूर का वियोग वर्णन इसलिए भी सार्थक है, क्योंकि ''सूरदास का विहार-स्थल जिस प्रकार की घर की चारदीवारी के भीतर तक ही न रहकर यमुना के हरे-भरे कछारों, करील के कुंजों और वनस्थलियों तक फैला है उसी प्रकार उनका विरह वर्णन भी ''बैरिन भई रतियां'' और ''साँपिन भई संजिया'' तक ही न रहकर प्रकृति के खुले क्षेत्र के बीच दूर-दूर तक पहुंचता है।''[51]

आचार्य शुक्ल ने सूरदास की भाषा और अलंकारों के प्रयोग की विशेषताओं की जांच करते हुए लिखा है कि ''सूर की भाषा चलती हुई और स्वाभाविक है। उन्होंने चलते हुए वाक्यों, मुहावरों और कहीं-कहीं कहावतों का बहुत अच्छा प्रयोग किया है। उनकी भाषा में संस्कृत के पद परम्परागत भाषा के प्रयोग और ब्रजभाषा के शब्दों के अनेक प्रयोग भी मिलते हैं। सूर के अलंकारों के प्रयोग में अर्थालंकारों की प्रचुरता है। उन्होंने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और सादृष्यमूलक अलंकारों का बखूबी प्रयोग किया है। शुक्ल जी को सूरदास जी में जितनी सहृदयता और भावुकता दिखाई पड़ती है प्राय: उतनी ही चतुरता और वाग्विदग्धता थी। इसलिए उन्हें लगता है कि सूर की उक्तियों में वचन भाव-प्रेरित वक्रता कवित्व की वृद्धि करती है। भाकेद्रेक से उक्ति में रमणीयता आती है जिससे कविता की रमणीयता की वृद्धि होती है।

आचार्य शुक्ल की आलोचना का यह भी गुण है कि वे कबीर के विरोध में कभी जायसी कभी तुलसी और कभी सूर को खड़ा करते हैं तो सूर के विरोध में तुलसी को सामने लाते हैं। उनके अनुसार सूर की बड़ी भारी विशेषता है नवीन प्रसंगों की उद्भावना, पसंगोद्भावना कराने वाली ऐसी प्रतिभा कबीर, जायसी और तुलसी किसी में नहीं है। बावजूद इसके सूर का काव्यक्षेत्र तुलसी के समान व्यापक नहीं है। परन्तु वर्ण्यविषय की परिमिति के कारण वस्तुविन्यास के संकोच की सरक अलंकार रूप में लाए हुए पदार्थों के प्राचुर्य द्वारा पूरी हो जाती है। शुक्ल जी के अनुसार इस परिमिति के दो कारण हैं—एक तो सूरदास ने प्रबंध काव्य की रचना नहीं की, दूसरे जीवन की बालवृति और यौवनवृति को ही

3841 HA/02—3

काव्यविषय के रूप में चुना। इतना ही नहीं उनकी रचनाओं में तो न जीवन की अनेकरूपता है और न लोकसंघर्ष से उत्पन्न विविध व्यापारों की योजना। हैरानी तो तब और होती है कि जब शुक्ल जी को गोपियों के वियोग में वह गम्भीरता नहीं दिखाई देती जो सीता के वियोग में है। उनके लिए सूर का वियोग वर्णन केवल वियोग वर्णन के लिए ही अधिक है। परिस्थितियों की उपज नहीं है। दूसरी ओर शक्ति शील और सौंदर्य भगवान की इन तीन विभूतियों में से सूर ने केवल सौंदर्य तक ही अपने को सीमित रखा, जो प्रेम को आकर्षित करता है। फिर भी विडम्बना यह है कि शुक्ल जी को सूर का ''प्रेम—पक्ष लोक से न्यारा और एकांतिक'' लगता है। उन्हें इस बात की भी चिन्ता है कि सूर की कविता में न तो समाज की और न लोकसंग्रह की चिन्ताएं हैं। परन्तु डा. मैनेजर पाण्डेय ने शुक्ल जी की इस धारणा से विरोध व्यक्त करते हुए लिखा है कि ''आचार्य शुक्ल जिसे मर्यादा कहते हैं वह वास्तव में रूढ़ि है। रूढ़ियाँ केवल शास्त्र की ही नहीं होती, लोक की भी होती हैं। लोक की रूढ़ियां शास्त्र की रूढ़ियों से कम दमनकारी नहीं होतीं। समाज में प्रचलित रीति-रिवाज, मान-मर्यादा कुलकानि आदि से उपजा लोकभय प्राय: लोकधर्म बनकर मानवीय भावों और संबंधों के स्वतंत्र विकास को, खासतौर से प्रेम की दुनिया को छिन्न-भिन्न कर डालता है। गोपियों का प्रेम निर्द्वन्द और निर्भीक है। वह शास्त्र की रूढ़ि और लोक के भय से मुक्त है।''[52]

यह सच है कि तुलसी को अपना आदर्श और प्रिय कवि मानते हुए भी शुक्ल जी सूर के मूल्यांकन में भरसक उदार बनने की लगातार कोशिश करते दिखाई पड़ते हैं। परन्तु उनके पूर्वग्रह उनकी समीक्षा की निरपेक्ष दृष्टि में विकास में बाधक हो जाते हैं। डा. शिव कुमार मिश्र ने शुक्ल जी के उन काव्य मूल्यों की ओर संकेत किया है जो सूर की कविता के मूल्यांकन में विरोधी साबित हुए हैं। उन्होंने लिखा है कि ''जैसे ही उन्हें अपने लोकधर्म, समाज मंगल, कवि के पूर्णत्व, विरोधों के सामंजस्य, जीवन की अनेकरूपता आदि का भान होता है, उनके आगे तुलसी खड़े हो जाते हैं और फिर तुलसी के वियोग वर्णन की गम्भीरता के आगे सूर का वियोग वर्णन (अतिश्योक्तिपूर्ण होते हुए भी बालक्रीड़ा-सा लगने लगता है, एकांतिक तथा लोक बाह्य हो जाता है। शृंगार तथा वात्सल्य के क्षेत्रों में सूर की अपराजेयता को बार-बार कहते हुए भी वे उन्हीं के आगे एक बड़ी लकीर खींच देते हैं। शैली के स्वच्छंद समाज के प्रति उनकी मुग्धता अनायास मर्यादा तथा शील-निरूपण की उनकी चौहद्दी में घिरकर समाप्त-सी हो जाती है। यही शुक्ल जी के अपने आग्रहों की जमीन है जहाँ कबीर उन्हें लोकधर्म के विरोधी, सूर का प्रेम लोकबाह्य, जायसी का प्रेम एकांतिक दिखाई पड़ने लगता है। और कुछेक किन्तु-परन्तु लगाकर बात को संभालने का प्रयत्न पूरी तरह असर नहीं कर पाता)।''[53]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक ''गोस्वामी तुलसीदास'' के वक्तव्य में लिखा है कि ''इसे गोस्वामी जी के महत्व के साक्षात्कार और उनकी विशेषताओं के प्रदर्शन का लघु प्रयत्न मात्र समझना चाहिए।'' उन्होंने अपनी इस पुस्तक में तुलसी की शक्तिपद्धति, प्रकृति और स्वभाव, लोकधर्म तथा धर्म और जातीयता का समन्वय, मंगलाशा, लोकनीति और मर्यादावाद, शील साधना और भक्ति, ज्ञान और भक्ति, तुलसी का भावुकता और काव्य पद्धति, शील निरूपण और चरित्रचित्रण, बाह्य दृश्य चित्रण, अलंकार विधान और उक्ति वैचित्य भाषा का अधिकार, मानस की धर्मभूमि और हिंदी साहित्य में गोस्वामी जी का स्थान और उनके महत्व को निरूपित और प्रतिपादित किया है। इसी के साथ उन्होंने कुछ खटकने वाली बातों की चर्चा भी की है। परन्तु उनका मन उसमें नहीं रमा है।

शुक्ल जी ने तुलसी की भक्ति का तुलनात्मक विवेचन करते हुए उसे ईसाई, यहूदी और इस्लामी भक्ति पद्धति से भिन्न और विशिष्ट बतलाया है। उसकी विशेषता इस बात में है कि उसमें जीवन की सामाजिकता की स्वीकृति, हिन्दू जनता की मध्यकालीन चेतना की अभिव्यक्ति और भगवान के शील, शक्ति एवं सौंदर्य के लोकमंगलकारी रूप की प्रतिष्ठा है। इसका कारण यह है कि तुलसी की भक्ति व्यक्ति के साथ-साथ समाज कल्याण, समाज में लोकधर्म और लोकमर्यादा की प्रतिष्ठा से भी जुड़ी है। उनकी लोकसंग्रही दृष्टि सदाचार, नीति, लोक और वेद की मर्यादाओं के पालन से विरत नहीं है। डा. नामवर सिंह ने इस लोकधर्म असंगतियों और अन्तर्विरोधों की ओर संकेत किया है, जबकि डा. मैनेजर पाण्डेय ने अन्तर्विरोध के कारणों की तलाश करते हुए लिखा है कि भक्ति आंदोलन के प्रत्येक कवि के लोकधर्म का रूप उसकी विश्वदृष्टि के अनुरूप है और कवि की विश्वदृष्टि पर उस वर्ग या समुदाय की जिन्दगी की वास्तविकताओं और आकांक्षाओं की छाप है, जिसका वह सदस्य है।

वही विश्वदृष्टि प्रत्येक कवि की भक्ति भावना, सामाजिक चेतना और काव्य रचना के विशिष्ट स्वरूप का निर्माण करती है।[54]

शुक्ल जी के अनुसार तुलसी पर स्त्रियों की निन्दा का महापातक लगाया जाता है, पर यह अपराध उन्होंने अपनी विरक्ति की पुष्टि के लिए किया है। उसे उनका वैरागीपन

समझना चाहिए। परन्तु उन्होंने इतना अवश्य लिखा है कि "तुलसीदास जी पुरुषों की अधीनता में रहकर गृहस्थी का कार्य संभालना ही स्त्रियों के लिए बहुत समझते थे। उन्हें घर से बाहर निकालने वाली स्वतंत्रता को वे बुरा समझते थे। शुक्ल जी ने तुलसीदास के शूद्रों के प्रति दृष्टिकोण को औचित्यपूर्ण सिद्ध करते हुए लिखा है कि "समाज में ऊंची-नीची श्रेणियां बराबर थीं और बराबर रहेंगी।"

परन्तु शुक्ल जी की आलोचना की सबसे बड़ी विशेषता है जीवन और जगत की सत्यता का प्रतिपादन। इसलिए वे जीवन और जगत की वास्तविक दशाओं के चित्रण को सच्चे कवि और सच्ची कविता की कसौटी मानते हैं। उनके अनुसार भारतीय कवियों की मूल प्रवृत्ति वास्तविकता की ओर रही है। इसीलिए तुलसी की रचनात्मक प्रवत्ति भी काल्पनिक वैचित्र्य विधान के बदले वास्तविक जीवन-दशाओं के चित्रण की ओर अधिक रही है। इस प्रकार शुक्ल जी वास्तविक जीवन दशाओं के चित्रण के द्वारा जीवन के यथार्थ चित्रण की आवश्यकता पर बल देते हैं।

शुक्ल जी यह बतलाते हैं कि तुलसी की रचनात्मक प्रवृति काव्य के अतिरंजित स्वरूप की ओर नहीं थी। वास्तविक में उनकी दृष्टि प्रबंध काव्य के भीतर जीवन दशाओं के मार्मिक पक्षों के उद्‌घाटन में लगी रहती है। यही कारण है कि तुलसी वस्तु व्यापार के चित्रण में निपुण और भावों की व्यंजना को अत्यंत उत्कर्ष तक पहुंचाने में सफल हैं। शुक्ल जी तुलसी की अनुभूति को जगत की अनुभूति से अलग नहीं मानते। इसी सच्चाई की ओर संकेत करते हुए उन्होंने लिखा है कि "विनय" में कलि की करालता से उत्पन्न जिस व्याकुलता या कातरता का उन्होंने वर्णन किया है। वे केवल उन्हीं का हीं नहीं, समस्त लोक की है।[55]

शुक्ल जी ने रामकथा के अत्यन्त मार्मिक स्थलों में राम का अयोध्या त्याग और वनगमन, भरत और राम का मिलाप, शवरी का अतिथ्य, लक्ष्मण को शक्ति लगना आदि को अत्यन्त उल्लेखनीय माना है इन प्रसंगों की मर्मस्पर्शिता शुक्ल जी को अच्छी लगती है, परन्तु राम वनगमन की मर्मस्पर्शिता उन्हें सबसे अधिक अच्छी लगती है जो उनके हृदय पर सीधे-सीधे प्रभाव डालती है। इसी प्रभाव के वशीभूत होकर उन्होंने लिखा है कि "एक सुन्दर राजकुमार के छोटे भाई और स्त्री को लेकर घर से निकलने और वन-वन फिरने से अधिक मर्मस्पर्शी दृश्य क्या हो सकता है। यही कारण है कि शुक्ल जी मानव प्रवृति के जितने अधिक रूपों के साथ तुलसी दास के हृदय का रागात्मक संबंध देख जाते हैं उतना हिंदी भाषा के और किसी कवि के हृदय का नहीं। इसीलिए वे तुलसी में भावात्मक सत्ता का अधिकाधिक विस्तार देख पाते हैं।

शुक्ल जी ने चरित्र चित्रण के प्रसंग में दशरथ और राम तथा भरत और विभीषण के चरित्रों के अन्तर्विरोध को उजागर किया है। मंथरा, कैकेयी और सीता जैसी स्त्री पात्रों के चरित्रों के चित्रण द्वारा उन्होंने नारी चरित्रों के द्वंद्व को भी बड़ी बारीकी से प्रस्तुत किया है। शुक्ल जी की यह मान्यता है कि बालिबध के रूप में राम के चरित्र पर दिखाई देने वाला काला धब्बा यदि नहीं होता तो राम की कोई बात मनुष्य की-सी नहीं लगती और वे मनुष्यों के बीच अवतार लेकर भी मनुष्यों के काम के न होते हैं। दूसरी और उन्होंने सेवक के रूप में हनुमान के चरित्र की विशेषताओं को भी प्रकट किया है।

आचार्य शुक्ल के अनुसार "हिंदी कवियों में संस्कृत कवियों का-सा वह सूक्ष्म निरीक्षण नहीं है जिससे प्राकृतिक दृश्यों का पूरा चित्र सामने खड़ा होता है। यदि किसी में यह बात थोड़ी बहुत है तो गोस्वामी तुलसीदास जी में ही।"[56]

इससे यह प्रमाणित होता है कि आचार्य शुक्ल तुलसी के प्रकृति चित्रण को पर्याप्त नहीं मानते परन्तु वे यह जरूर घोषित करते हैं कि "भाषा पर जैसा अधिकार गोस्वामी जी का है, वैसा और किसी हिंदी कवि का नहीं।" उनका ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर पूरा अधिकार था। उन्होंने तुलसी के अलंकारों के प्रयोग को उनके प्रबंध योजना से जोड़कर देखा है वहीं दूसरी ओर तुलसी काव्य में प्रयुक्त अलंकारों की जांच इस आधार पर की है कि वे भावों के उत्कर्ष, वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया के तीव्र अनुभव कराने में कितने सहायक हो सकते हैं। तुलसी के अलंकार के प्रयोग की विशेषता इस बात में भी है कि वे कवियों की दूर की उड़ान की तरह अलंकारों का प्रयोग नहीं करते बल्कि अगोचर वस्तु व्यापार को गोचन करने में उनका सार्थक प्रयोग करते हैं। परन्तु यह बात खटकती है कि शुक्ल जी ने तुलसी के छंदों की चर्चा को आवश्यक नहीं समझा है।

शुक्ल जी ने तुलसी की काव्यकला में बाधक कई दोषों की ओर संकेत किया है। तुलसी के कवि पर, धमेषिदेष्टा और नीतिकार का हावी होना उन्हें अच्छा नहीं लगता। उसी तरह उन्हें पतिव्रत और मित्रधर्म के उपदेश खटकने वाली बातें लगती हैं। परन्तु शुक्ल जी के आलोचनात्मक मूल्यों की कसौटी पर तुलसी बिल्कुल खरे उतरते हैं और तुलसी का मानव जीवन गाथा के रूप में प्रतिष्ठित हो पाता है। उनके द्वारा तुलसी के काव्य की आलोचना का महत्व इस बात में है

कि वे तुलसी साहित्य में सामाजिक विकास के प्रगतिशील आधारों की खोज करते हैं, दरबारी कवियों से अलगाकर प्रेम भावना को कर्म और लोकजीवन से जोड़ते हैं। हिंदी साहित्य में तुलसी दास के महत्व और उनके स्थान को निरूपित करते हुए शुक्ल जी लिखते हैं कि ''यदि कोई पूछे कि जनता के हृदय पर सबसे अधिक विस्तृत अधिकार रखनेवाला हिंदी का सबसे बड़ा कौन है तो उसका एकमात्र वही उत्तर ठीक हो सकता है कि भारत हृदय, भारतीकण्ठ, भक्त - चूड़ामणि गोस्वामी तुलसी दास।''

लोकमंगल की धारणा और कबीर

आचार्य शुक्ल जी भक्तिकाल के कवियों में कबीर के मूल्यांकन को लेकर जितने विवादों के घेरे में रहे हैं उतने ही छायावादी कवियों के मूल्यांकन को लेकर भी । उनके सूर, तुलसी और जायसी के मूल्यांकन को लेकर वैसा विवाद नहीं हुआ जैसा केवल कबीर के मूल्यांकन को लेकर विवाद खड़ा हुआ है । इस विवाद का कारण शुक्ल जी की मूल्यांकन दृष्टि में ही निहित है, जिसके कारण वे तुलसीदास की रचनाओं को उत्कृष्ट और तुलसी को हिंदी का महाकवि सिद्ध कर पाते हैं। वे कबीर के महत्व को आंकने में नहीं चूकते, परन्तु उनके लोकमंगल की धारणा सबसे बड़ी रुकावट बन जाती है। आचार्य शुक्ल ने कबीर के महत्व की अचूक पहचान करते हुए लिखा है कि कबीर ने निर्गुण पंथ बड़ी धूमधाम से चलाया । इसमें संदेह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को संभाला जो नाथपंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्तिरस से शुष्क पड़ता जा रहा था । उनके द्वारा यह बहुत ही आवश्यक कार्य हुआ। इसके साथ ही मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्म गौरव का भाव जगाया। शुक्ल जी के उपर्युक्त कथन में कबीरदास और उनकी कविता के महत्व की ओर संकेत है, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन कठिनाई उस समय होती है जब वे कहते है कि निर्गुण की रचनाएँ साहित्यिक नहीं है - फुटकर दोहों या पदों के रूप में जिनकी भाषा और शैली अधिकतर अव्यवस्थित और ऊटपटांग है। फिर कबीर की प्रतिक्षा चाहे लाख प्रखर ही क्यों न हो या फिर उनका प्रेम कामवासना विहीन ही क्यों न हो कोई फर्क नही पड़ता। लेकिन आश्चर्य तो तब होता है जब प्रेम और भक्तिरस की धारा बहाने वाले निम्न-श्रेणी की जनता में मनुष्यत्व और आत्म गौरब का भाव जगाने वाले कबीर दास और उनका काव्य केवल ईश्वर के धर्मस्वरुप रुप न रच पाने के कारण लोकमंगल के सांचे में फिट नहीं बैठते। यदि कोई कवि उनके इस सांचे में फिट बैठता है तो वे हैं महाकवि तुलसीदास। क्या कारण है कि तुलसी, जायसी और सूर पर लिखते हुए शुक्ल जी को कबीर बराबर याद रहते हैं? शुक्ल जी के अनुसार ''कबीर आदि की निर्गुण रचनाओं में ऊंच-नीच और जाति-पाति के भाव का त्याग और ईश्वर की भक्ति के लिए मनुष्य मात्र के समान अधिकार का स्वीकार था।'' लेकिन विचित्र बिडम्बना है कि उन्हीं रचनाओं में संस्कृत बुद्धि, संस्कृत हृदय और संस्कृत वाणी का वह विकास नहीं पाया जाता जो शिक्षित समाज को अपनी ओर आकर्षित करता।'' यह कैसा विरोधाभास है कि जो कबीरदास ऊंच-नीच की खाई को पाटने का प्रयास करते हैं, निम्न श्रेणी की जनता को प्रभावित करते हैं वहीं कबीर शिक्षित और शिष्ट जनता पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाते। शुक्ल जी के विचारों के इस अन्तर्विरोध की खोज उनके लोकधर्म की भूमि पर निर्मित लोकमंगल की धारणा की सीमाओं के रूप में की जा सकती है। आसस्मिक नहीं है कि शुक्ल जी ने लिखा है कि कबीर, दादू आदि के लोकधर्म विरोधी स्वरूप को यदि किसी ने पहचाना है तो गोस्वामी जी ने। उन्होंने देखा कि उनके बचनों से जनता की चिंतवृति में ऐसे घोर बिकार की आशंका है जिससे समाज विशृंखल हो जाएगा, उसकी मर्यादा नष्ट हो जाएगी। शायद शुक्ल जी आर्यशास्त्रानुमोदित लोकधर्म और उसकी टूटती हुई लोक मर्यादा की बात करते हैं जिसका दूसरा रूप वर्णाश्रम धर्म है। कबीर, दादू आदि निर्गुण इसी अर्थ में लोकविरोधी हो सकते हैं कि वे अपनी वाणी द्वारा ऊँच-नीच और जाति-पाति के भेदभाव को मिटा कर मनुष्य मात्र के समान अधिकार की बात कर रहे हैं। आचार्य शुक्ल के इसी-अन्तर्विरोध को उजागर करते हुए डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि ''भक्तिकाव्य में जहाँ वर्णाश्रमवादी समाजव्यवस्था, उस व्यवस्था के पोषक शास्त्रों और उन शास्त्रों को धारण करने वाले पंडितों का विरोध दिखाई देता है, वहीं आचार्य शुक्ल की भौंहे तन जाती हैं। ऐसा विरोध सबसे अधिक निर्गुण काव्य में है, इसलिए उसके सामने आते ही शुक्ल जी कटु हो जाते हैं।''[28] शुक्ल जी के लोकमंगल की धारणा के भीतर कबीर, सूर, जायसी और तुलसी सभी एक ही भूमि पर नहीं खड़े हैं और इन सबमें सबसे ऊची भूमि पर खड़े हैं तुलसीदास जी। शुक्ल जी को इसीलिए कबीर की रचनाओं में अनधिकार चर्चा, परम्परागत सामाजिक व्यवस्था का तिरस्कार, लोक का विरोध और मर्यादा का उल्लंघन दिखाई पड़ता है। पाण्डेय जी के अनुसार तात्पर्य यह कि जो पहले से चली आती सामाजिक व्यवस्था और मर्यादा को बदलने की प्रेरणा देगा वह तुलसीदास और शुक्ल जी के लोकधर्म का विरोधी होगा। सवाल यह है कि कैसे समाज और कैसी मर्यादा के लिए संतों की वाणी खतरा बन

रही थी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सामाजिक असमानता और जाति-पाति के भेदभाव पर टिकी हुई समाज-व्यवस्था और उसकी रक्षा करने वाली मर्यादाओं का विरोध निर्गुण संतों के काव्य में है। वही तुलसीदास को असह्य लगता है और रामचंद्र शुक्ल को लोक विरोधी।" इस प्रकार कबीर की रचनाएँ शुक्ल जी के लोकमंगल के दायरे में नहीं आतीं। कबीर की रचनाएं सगुणवादी काव्य की कसौटी और प्रबंध काव्य की कसौटी पर भी खरी उतरतीं। फलतः शुक्ल जी कबीर के साथ न्याय नहीं कर पाते हैं।

संदर्भ—संकेत

28. वही, पृ. 28
29. डॉ. रामविलास शर्मा : आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, पृ. 63
30. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : जायसी ग्रंथावली की भूमिका, पृ.1
31. वही, पृ. 1
32. वही, पृ. 1
33. वही, पृ. 2
34. वही, पृ.
35. वही, पृ. 39
36. वही, पृ. 42
37. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास,पृ. 42
38. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : जायसी ग्रंथावली की भूमिका, पृ. 152
39. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : भ्रमरगीत सार की भूमिका, पृ. 11.
40. डॉ. रामविलास शर्मा : आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, पृ. 88-89.
41. डॉ. मैनेजर पांडेय : भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृ. 289
42. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : भ्रमरगीत सार की भूमिका, पृ. 58
43. वही,पृ. 36
44. वही, पृ. 12
45. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : सूरदास पृ. 173-74
46. आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 200
47. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : भ्रमरगीत सार की भूमिका, पृ. 20.
48. वही, पृ. 21
49. वही, पृ. 24
50. वही, पृ. 26
51. डॉ. मैनेजर पांडेय, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, 39-40
52. डॉ. शिव कुमार मिश्र : हिंदी आलोचना की परंपरा और आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 86
53. डॉ. मैनेजर पाण्डेय : भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृ. 32.
54. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 48
55. वही, पृ. 86.
56. वही, पृ. 111.
57. डॉ. मैनेजर पांडेय : भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृ. 28

डॉ. रुस्तम राय, सहायक निदेशक, मोरलो भवन परिसर, ओल्ड पीक होटल, शिलांग-793001

❑❑

3841 HA/02—4

तुलसीदास और कंबन के नारी-पात्र : एक तुलनात्मक अध्ययन

—डा. एम. शेषन्

पृष्ठभूमि :

भारतीय वाङ्मय में नारी का महत्व

शिव और शक्ति पुरुष और प्रकृति के उद्भव और विकास की प्रेरक शक्ति के रूप में माने जाते हैं। ब्रह्माण्ड भर में जो जीवन सत्ता है उसकी संचालक शक्ति के रूप में हमारे भारतीय दर्शन में इन को माना गया है। दार्शनिक दृष्टि से नहीं, सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से भी देखा जाय तो भी नारी और पुरुष का योग मानव-जीवन का आधार है। आद्याशक्ति के रूप में भारतीय वाङ्मय में नारी को महोन्नत स्थान दिया गया है। सामाजिक जीवन में परिवार एवं समाज के केंद्र एवं सृष्टिधारिणी के रूप में उसे महत्व मिला है। बाइबिल में भी आदम की प्रेरकशक्ति के रूप में हव्वा को स्थान दिया गया है। इस तरह जीवन में अतुल स्थान रखने वाली नारी को, विश्व भर के साहित्यों में एवं अन्य कलाओं में प्रमुख स्थान मिला है। विश्व साहित्य का आधे से अधिक अंश नारी अथवा नारी समस्याओं पर केंद्रित है। हार्दिक भावनाओं के आधार एवं सौंदर्य की मूर्ति के रूप में और बाहरी मानवीय संवेदनाओं के प्रतिनिधि के रूप में उसें स्थान दिया है।

आदिकवि वाल्मीकि ने नारीत्व के चरमादर्श के रूप में सीता जी का जो चित्रण किया है वह आज तक भारतीय नारी के लिए अनुकरणीय आदर्श माना जाता है। रामचरित्र निस्सन्देह श्रेष्ठ है, लेकिन परवर्ती समाज और संस्कृति को प्रभावित करने में शायद सीता का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है। ''सीतायाः चरित्रं महत्'' जैसी उक्ति भविष्यवाणी की भांति आज भी सार्थक बनी हुई है। ऐसे महान् चरित्र सीता को भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओं के साहित्यकारों ने अपने रामायण काव्य में विशेष ध्यान देकर और अपूर्व श्रद्धा के साथ प्रस्तुत किया है। इनमें हिंदी में तुलसीदास और तमिल में कंबन का स्थान अनुपम है।

सीता के चरित्र के साथ-साथ इन कवियों ने अन्य नारी पात्रों का भी जो चित्रण किया है उनसे भारतीय संस्कृति के सामान्य जीवन-मूल्यों का तथा प्रादेशिक संस्कृतियों के विशिष्ट मूल्यों का ज्ञान होता है। दोनों कवियों की सृजन-प्रतिभा और व्यक्तियों के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं का उद्घाटन करना तथा दो संस्कृतियों के द्वारा स्वीकृत जीवन मूल्यों का निर्णय करके उनके भारतीय तत्वों को खोज निकालना इस तुलनात्मक अध्ययन का उद्देश्य है।

हिंदी साहित्य के रामभक्ति काव्यों में चित्रित नारी का स्वरूप मर्यादावादी दृष्टिकोण से अनुप्रमाणित होने के कारण मानव मन की कलुपित प्रेरणाओं से परे है एवं पवित्र है। इस मार्ग के प्रतिनिधि, कवि संत तुलसीदास की नारी-निंदा भी अंशतः नारी के प्रति अपनायी हुई दोहरी दृष्टि का द्योतक है।

तुलसीदास के काल तक पहुंचते-पहुंचते प्राचीन साहित्य में चित्रित नारी को कई परिवर्तनों से होकर गुजरना पड़ा था। सामाजिक जीवनगत वस्तुस्थितियों में परिवर्तन इसका प्रमुख कारण रहा है। वैदिक युग की आत्मनिर्भर नारी को मध्ययुग में कैसे घर की चार दीवारों की बंदिनी बनना पड़ा था, यह उसके जीवन की विषमताओं की कहानी है; जिसका थोड़ा बहुत आभास विभिन्न युगों के साहित्य में मिल जाता है।

धार्मिक साहित्य की उत्तरोत्तर जटिलता के कारण शिक्षा का द्वार बन्द होना, विवाह की आयु का उत्तरोत्तर कम होना, संन्यास की प्रवृत्ति के समर्थक विभिन्न कालों में प्रचलित धार्मिक संप्रदाय, समय-समय पर देश पर हुए विदेशी आक्रमण इत्यादि मध्ययुग के जीवन एवं साहित्य में नारी की पिछड़ी हुई दशा में प्रमुख कारण रहे हैं।

परिवर्तन की गतिशीलता सदा एक सी नहीं रही। अक्सर यह देखा जाता है कि जब-जब समाज के नैतिक बंधन ढीले पड़े थे तब नारी को छूट अधिक मिल पाई; फिर से विलास के अत्यधिक प्रसार के फलस्वरूप समाज को नारी के प्रति कट्टर बनना पड़ा। बारी-बारी से होने वाली सामाजिक दृष्टि की ढ़िलाई एवं कसावट का अधिक प्रभाव नारी जीवन पर पड़ना स्वाभाविक था।

दूसरी स्मरणीय बात है नारी के प्रति अपनाई गई दृष्टि का दोहरापन। यह लगभग सभी कालों में चलता आया है। निंदा सत्तुतिपरक इस दृष्टिकोण के दो कारण हो सकते हैं। जीवन में नारी के संग एवं सहयोग की अनिवार्यता के कारण व्यवहारपरक बुद्धि मानव मन को नारी की महत्ता स्वीकार करने के लिए बाध्य करती है। दूसरी ओर कामिनी रूप में नारी को अपने आत्मिक उत्थान के पथ का बाधक मानने की प्रवृत्ति, परंपरा से उस मन में जम गयी है। तुलसीदास की नारी विषयक दृष्टि का भी इन परंपरिक तत्वों से प्रेरित होना स्वाभाविक है।

तमिल साहित्य में संघकाल से लेकर लगभग बारहवीं शताब्दी तक के साहित्य में चित्रित नारी जीवन से स्पष्ट विदित है कि आरंभ काल में उसे विवाह, विचारण, शिक्षा, धार्मिक अनुसरण आदि संबंधी जो अधिकार प्राप्त थे, उनमें कालांतर से विशेष परिवर्तन नहीं आ पाया है। उत्तरकाल में बिरले स्थानों पर नारी संबंधी कुछ टिप्पणियां दृष्टिगोचर होती हैं।

देश के अन्य भागों की अपेक्षा दक्षिण में परिवर्तन की मंदगति के कुछ संभाव्य कारण हो सकते हैं—नारी जीवन के विकास पर प्रतिरोध लगाने वाले कट्टर हिंदू धर्म शास्त्रों की स्रोतभूमि से इस प्रदेश का दूरस्थित होना।

यहां के लोकजीवन की परिस्थितियां कुछ भिन्न थीं। राजनीतिक विपत्तियों के विपरीत प्रभाव यहां के नारी-जीवन पर कम पड़ा था। सती प्रथा पर्दा आदि प्रथाओं का कट्टर अनुसरण इस काल में यहां न होना भी इस दृष्टि से विचारणीय है।

तुलसीदास से पूर्व के हिंदी साहित्य एवं कंबन से पूर्व के तमिल साहित्य की काल सीमा एवं क्षेत्र सीमा विचारणीय है। तुलसीदास से पूर्व वैदिक काल से चलने वाले समस्त उत्तर भारत में व्याप्त एक विशाल परंपरा थी। उतने दीर्घ समय से बृहत्तर क्षेत्र में घटित होने वाली घटनाओं का लोकमानस पर गहरा प्रभाव स्वाभाविक है। नारी विषयक टिप्पणियों की बहुलता इस दृष्टि से स्वाभाविक है। इसकी तुलना में सीमित भाषा-क्षेत्र के तमिल साहित्य में इनका स्वल्प-संख्यक होना भी स्वाभाविक है।

कंबन एवं तुलसी के नारी-पात्र

राम कथा के नारी पात्र मानव-स्वभाव की विविधताओं एवं जीवन की वास्तविकताओं तथा आदर्शों को प्रस्तुत करने वाले हैं। इनमें कुछ पात्र कथा में स्थान की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं कुछ अपने चरित्र-बल के आधार पर, किसी विशेष आदर्श की स्थापना करने से अथवा किसी गर्ह्य तत्त्व की अवांछनीयता का प्रतिपादन करने से महत्व रखते हैं। कथा में स्थान, चारित्रिक बल इन दोनों दृष्टियों से रामायण के नारी पात्रों में सीता का चरित्र सर्वाधिक महत्त्व का है। सीता के पश्चात् कथा की दृष्टि से महत्वूपर्ण नारी पात्र शूर्पणखा तथा कैकेयी है। अपने चरित्र बल के आधार पर व्यक्तिगत महत्व रखने वाले नारी-पात्र कौशल्या, सुमित्रा, मंथरा, तारा, मंदोदरी अनसूया, शबरी, स्वयंप्रभा, त्रिजटा, अहल्या, ताटका आदि हैं।

दोनों कवियों की पात्र रचना की मूल प्रेरणा वाल्मीकी रामायण तथा अध्यात्म रामायण से होने के कारण पृष्ठभूमि के रूप में उन काव्यों में चित्रित इन पात्रों का भी स्पर्श किया गया है।

दोनों के नारी-पात्रों का सांस्कृतिक अध्ययन

भारतीय संस्कृति के उन्नायक गौरव ग्रंथों में रामायण का प्रमुख स्थान है। अपने सांस्कृतिक मूल्यों के कारण राम-कथा में यहां के जनजीवन के लिए, नित्य प्रति जीवन के एक आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित है। इसके अनेक सद्गुण संपन्न नारी-पात्र भारत की नारियों के लिए अनुकरणीय उदाहरण है। दुष्पात्रों के रूप में चित्रित नारियां एक चेतावनी के रूप में आती हैं।

रामायण के मूल पात्रों को कंबन और तुलसीदास ने जो रूप दिए हैं, उनमें भारतीय संस्कृति के सामान्य तत्व भी मिलते हैं। और दोनों कवियों की अपनी-अपनी परंपराओं के द्वारा अनुमोदित सांस्कृतिक मूल्यों का भी प्रतिष्ठापन हुआ है। ऐसे सामान्य एवं प्रादेशिक संस्कृतियों के आदर्श तथा मूल्यों का समावेश पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन के संदर्भ में देखा जा सकता है।

विविध पारिवारिक संबंधों द्वारा कंबन रामायण तथा तुलसी रामायण में नारी के सुदृढ़ स्थान का प्रकाशन हुआ है। इससे प्रकट है पारिवारिक आदर्शों की स्थापना में नारी पात्रों का भी महत्वपूर्ण रोल रहा है। इन दोनों कवियों के द्वारा अभिव्यक्त पारिवारिक आदर्श प्रमुखतः भारतीय संस्कृति की तद्विषयक प्रचलित मान्यताओं पर आधारित है जिनका प्रकाशन अंशतः मूल रामकथा के द्वारा भी हुआ है। कंबन तथा तुलसीदास दोनों कवियों के चित्रण में सांस्कृतिक आदर्शों के प्रति इन कवियों का आग्रह परलक्षित है। मार्यादावादी भक्त कवि तुलसीदास के चित्रण में पाबंदियों का निर्वाह,

तथा कवि की भक्ति संबंधी मान्यताओं का प्रतिपादन अधिक हुआ है।

सामाजिक दशा

कंबन तथा तुलसीदास के समकालीन समाज की दशा का तुलनात्मक अध्ययन हमारे अध्ययन के लिए आवश्यक होगा।

कंबन के युग में तमिल प्रदेश की सामाजिक स्थिति

कंबन के युग में तमिल प्रदेश का समाज हर दृष्टि से संपन्न एवं समुन्नत था । चोल राजाओं के उत्थानकाल में राज्य आर्थिक दृष्टि से स्वनिर्भर था। उस समाज में अन्न से लेकर आभूषणों तक के लिए दरित्रता नहीं थी। विशेषकर कंबन की खास जन्मभूमि तंजाऊर जिला 'अन्नमंडित चोलनाडु' (चोलनाड़ चोरुडैत्तु) कहलाता था। राजकोष स्वर्ण से भरा हुआ था और जन सामान्य के लिए भी स्वर्ण सहज प्राप्य रहा। आभूषण गढ़ने की कला सर्वोन्निति पर था। राज्य में स्वर्ण जांचने के निगम बने हुए थे।[1]

विधि कलाओं का अभ्यास प्रचुर मात्रा में देशभर में चलता था। संगीत, नृत्यकला, चित्रकारिता, कढ़ाई, प्रसाधन कला आदि ललित कलायें तथा बढ़ईगिरी, लोहारी, बुनाई आदि हस्तकलाएं विकासोन्मुख थीं। वर्णाश्रम प्रथा के अनुसार जातीय कर्मों का अनुसरण स्वत: चल रहा थी तथा समाज में पूर्ण सामंजस्य था।[2]

राजा-प्रजा के पास मनोरंजन के लिए अवकाश था। मद्यपान, वेश्याएं, नृत्य, नाटक, खेलकूद आदि सबके आयोजन थे। संपन्नता के फलस्वरूप विलासिता समाज में व्याप्त एवं सहज मान्य थी। पेशेवर धंधे, शिक्षा आदि का भी प्रबंध था।

कंबन चोल राजवंश के उत्थानकाल के कवि थे। उनका समय तृती कुलोत्तुंग चोल के युग के प्रारंभिक दशकों का माना जाता है। उस युग में समाज का ढांचा सुदृढ़ था। युद्ध भी कभी-कभी होते थे। उनमें विजय बहुधा चोलों के पक्ष में रही। साम्राज्य की श्रीवृद्धि का फल सीधे प्रजा तक पहुंच पाती थी। प्रजा सुखी एवं संपन्न थी। (आधार : पिल्लै : के. के. 1972 : 296, 297) चोलों के शासन काल को तमिल संस्कृति का स्वर्ण-युग भी बताया गया है।[3]

तुलसीदास के युग की सामाजिक स्थिति

तुलसीदास के युग में देश पर तंत्र था और वह सामाजिक विघटन का युग था। प्रजा का एक वर्ग जो राज्याश्रित था; वह सुखी एवं संपन्न रहा। परन्तु अधिकांश जनता को दशा शोचनीय थी। उस युग के समाज के जटिल ढांचे की स्पष्ट झलक प्रेमशंकर (1977 : 68-70) के निम्न शब्दों में मिल जाती है।

''तुलसी जिस मध्यकालीन समाज की उपज है, उसकी पहचान बहुत आसान नहीं,क्योंकि उसमें जिंदगी कई परतों में आती दिखाई देती है।''

''कला, स्थापत्य रचना की ऊंचाइयां सामन्तवादी व्यवस्था में स्वाभाविक रूप में देखी जाती है, क्योंकि शासक इनमें अपनी तुष्टि पाते हैं पर जहां तक सामान्य जन की जिंदगी का प्रश्न है, वह सुखी कदापि नहीं कही जा सकती।''

''हिंदू मुसलमान के अपने धर्म थे, पर सामाजिक, राजनीतिक ऐक्य नहीं था—इस दृष्टि से एक बिखरा देश, असंगठित समाज''। तुलसीदास का समकालीन समाज भौतिकता एवं विलासिता का शिकार था परन्तु, यह संपन्न स्वर्निभर राष्ट्र के स्वस्थ वातावरण में पनपी हुई भोग शक्ति नहीं थी। वरन् विलासी शासक वर्ग के प्रभाव से, लाचार जनता में व्याप्त विलासिता थी। धनी एवं स्वार्थान्ध शासक वर्ग असाधारण लिप्सा एवं शक्ति के दुरुपयोग के कारण,जनता में आत्मविश्वास की कमी थी, दरिद्रता, दुराचार इत्यादि का प्रचार था।

दोनों कवियों के समकालीन समाज में नारी

कंबन के युग में स्त्रियों की सामाजिक सुरक्षा की समस्या उतनी अधिक नहीं थी। उस काल में दक्षिण का भूभाग स्वतंत्र था, स्त्रियों को ललित कलाओं की शिक्षा की सुविधा थी। विशेषत: राजवंश एवं उच्चवर्ग की कन्यायें नृत्य, संगीत आदि ललित कलाओं में निपुणता हासिल करती थी। उन्हें संपत्ति का अधिकार था। राजमहिषियों तथा कुमारियां मंदिरों के लिए अनुदान देती थी। राजभवन के रनिवास, पाकशाला, स्नान कक्ष आदि में नारियां नियुक्त की जाती थीं। उन्हें साजसज्जा, घुड़सवारी, जलविहार आदि के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त थे।

तुलसीदास के युग में नारी की दशा अधिक सुरक्षित नहीं थी। उसका अपहरण तथा आग्रहपूर्वक रचे जानेवाले विवाह समाज में साधारण से थे। ''मुसलमान प्रजा को, चाहे किसी भी हिंदू स्त्री से शादी करने का और उसे शादी के लिए मजबूर करने का अधिकार प्राप्त था। (रामप्रतिपाल सिंह 1976 : 127)'' कामुक एवं नृशंस यवनों के कारणों हिंदू

स्त्रियों का सतीत्व सुरक्षित नहीं था, इसलिए नारी स्वातंत्र्य पर अंकुश लगाना पड़ा'' (रामेश्वरदयाल अग्रवाल : 1973 : 63) इतिहासकारों के आधार से विदित है कि किस प्रकार उस मध्यकालीन समाज में नारी के प्रति विलासिता की दृष्टि रही, तथा वह बालविवाह, सती, पर्दा आदि सामाजिक कुप्रथाओं का शिकार बनी थी।[5]

परिवार में उसकी दशा संतोषजनक नहीं थी। भागीरथ मिश्र (1954 : 6) के शब्दों में ''स्त्री को परिवार में बंधन अनेक थे, भय अनेक थे। पर स्वच्छन्दता और अधिकार कम। नारी आर्थिक दृष्टि से पुरुष पर आश्रित थी। मुगलों और पठानों की क्रूर सौंदर्य लिप्सा ने उसे वासनात्मक आकर्षण एवं विलासात्मक महत्व ही दे रखा था।'' सार यह कि तुलसीदास के युग में देश की वस्तु स्थितियां इस योग्य नहीं रही कि नारी को विचरण आदि की निर्बाध सामाजिक स्वतंत्रता दी जा सके।

नारी की सामाजिक दशा की अभिव्यक्ति

समकालीन नारी जीवन की वस्तुस्थितियां या तो प्रत्यक्षत: काव्यों में चित्रित होती हैं या कवियों के नारी विषयक मान्यताओं एवं आदर्शों का आधार बनकर कवि की समग्र नारी भावना को प्रभावित करती हैं। कंब रामायण तथा तुलसी रामायण के नारी पात्र पूर्णत: कवि-कल्पित नहीं हैं। आदिकवि ने पहले ही अपने ऐतिहासिक महाकाव्य में इन पात्रों के रूप गढ़ रखे थे। ये पात्र इन कवियों के काल के नहीं वरन् एक अन्य कवि के थे। कंबन तथा तुलसीदास ने अपने काव्यों में नारी पात्रों के चित्रण में इस मूल ढांचे को प्रमुखत: ग्रहण किया है। इन कवियों के द्वारा नारी पात्रों के चित्रण में अन्य तत्वों का समावेश कम हुआ है। अस्तु, इन दोनों काव्यों में नारी-पात्रों के माध्यम से कवियों के काल की सामाजिक वास्तविकताओं के प्रकाशन के लिए अवकाश कम है। परन्तु फिर भी कवि की अपने साथ वाले समाज का अभिन्न अंग होना एवं उससे प्रेरणा ग्रहण करना स्वाभाविक है। इस नाते कंबन तथा तुलसीदास के द्वारा राम कथा के नारी पात्रों के चित्रण में भी अपने-अपने समय के लोक जीवन के कुछ तत्व उभरकर आये हैं।

आधृत काव्यों में मूल काव्य से होने वाली भिन्नताएं अथवा व्यतिमान बहुधा सोद्देश्य होते हैं। पात्रों में होने वाले व्यतिमान कवि की कुछ विशेष मान्यताओं को प्रभावित करने वाली उनके देशकाल की संस्कृति अथवा परिस्थिति के कारण भी होते हैं। इस प्रकार के व्यतिमान एक भिन्न युगीन संस्कृति के परोक्ष तथा आंशिक प्रतिपादक बन जाते हैं। नारी पात्रों के चित्रण में अपनाये हुए परिवर्तन इस दृष्टि से विचारणीय है।

कंबन तथा तुलसीदास के युग में नारी की धार्मिक दशा

कंबन के समकालीन समाज में हिंदू राज्य धर्म पर स्थापित था। राजाश्रित धर्म के रूप में शैव धर्म की प्रबलता थी। परन्तु वैष्णव धर्म भी उपेक्षित नहीं था। दोनों में सामंजस्य का अभाव नहीं रहा। उस युग में राजवंश की महिलाएं मंदिरों में जाकर देवोपासना करती थीं और वे अक्सर मंदिरों के निर्वाह के लिए अनुदान भी दिया करती थीं। राजकुमारियां एवं महिषियां ही नहीं, वरन् कभी-कभी वेश्याएं भी अनुदान देती थीं। आधार (पिल्लै के. के. 1972 : 316)

तुलसीदास के युग में हिंदू धर्म राज्याश्रित नहीं रहा और उनकी स्थिति भी उतनी दृढ़ नहीं थी। वह अनेक छोटे बड़े संप्रदाओं में विभक्त था। धार्मिक दशा दुर्बल ही नहीं अपितु दूषित भी हो उठी थी अत: शोचनीय अवस्था में थी। हिंदू समाज में धर्माचार के नाम पर अनेक पाखंडों एवं अंधविश्वासों का पोषण हो रहा था।[7] अक्सर नारी को भी इन अंधविश्वासों का शिकार बनना पड़ता था। सामाजिक सुरक्षा के अभाव में हिंदू ललनाएं एक ओर मुगलों की लिप्सा का शिकार बनीं, तो दूसरी ओर धर्म के नाम पर उनका सतीत्व अरक्षित था। अक्सर धर्म के रक्षक ब्राहाण पुजारी ही एकान्त में धर्म के बहाने उसका सतीत्व हर लेता था और अगले दिन उस स्त्री को रथ पर जगन्नाथ जी की प्रतिमा के साथ बिठाकर सड़कों में घुमाया जाता था। (राजपति दीक्षित : 1952,5,6)

कबंन तथा तुलसीदास के नारी पात्रों के द्वारा प्रस्तुत पारिवारिक आदर्शों का मूल आधार पारंपरिक भारतीय संस्कृति है। दोनों कवियों ने बाल्मीकी रामायण से गृहित पात्रों के मूल प्रारूप का परिष्करण एवं आदर्शीकरण करके इन पात्रों द्वारा पारिवारिक संबंधों का अधिक ग्राह्य एवं उज्जवल चित्र उपस्थित किया है। कंब रामायण में नारी पात्रों के सामाजिक जीवन का जो रूप उभर आया है उससे उनके समकालीन समाज में सुखी संपन्न जीवन के लिए नारी को प्राप्त अवकाश उसकी स्वतंत्रता के लक्षण परिलक्षित है। तुलसीदास द्वारा सीता के चित्रण में उनके युग की वस्तु स्थितियों का परोक्ष प्रभाव है। संभवत: नारी के प्रति प्रदर्शित तुलसीदास की तथाकथित कटुता का आंशिक कारण उनके समकालीन समाज की वास्तविकताएं हो सकती हैं। शास्त्रोक्त संस्कारों का अधिक प्रकाशन तुलसीदास के नारी पात्रों के द्वारा हुआ है।

3841 HA/02—5

कथावस्तु की परिसीमाओं से आवद्ध होने के कारण कंबन तथा तुलसीदास के नारी पात्रों के चित्रण में, इन कवियों को अपने क्षेत्रीय अथवा युगीन संस्कृति विशेष के प्रतिपादन के लिए गुंजाइश कम है। किन्तु फिर भी उनके नारी पात्रों के इस पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन संबंधी अध्ययन से विदित है कि इनके समकालीन जीवन में प्रचलित भारतीय संस्कृति की नारी-विषयक सामान्य मान्यताएं एवं इनकी स्थानीय संस्कृति की कतिपय विशेषताएं इनके काव्यों में उभर आई हैं जिनको हम उनकी मौलिक विशेषताएं मान सकते हैं।

स्वभावत: नारी पात्रों के चित्रण में भी प्रभाव एवं वैयक्तिक दृष्टि से कुछ समानताएं हैं। नारी पात्रों में कुछ समानताएं और कुछ भिन्नताएं दृष्टिगत होती हैं। ऐसी समानताएं तथा भिन्नताएं नारी के प्रति कवियों की दृष्टि उनके व्यक्तिगत तथा मौलिक चिन्तन को समझने में सहायक हैं।

वाल्मीकि की तुलना में देखा जाए तो कंबन तथा तुलसीदास में पात्रों के आदर्शीकरण की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। आदर्श के प्रति कंबन की दृष्टि से तुलसीदास की दृष्टि भिन्न है। व्यक्तिगत रूप में कंबन भक्त अवश्य थे किन्तु उन्होंने उसे अपने चरित्र चित्रण का एक आधार नहीं माना। सामान्यत: लौकिक जीवन की दृष्टि से जो गुण उत्कृष्ट माने जाते हैं उनकी समष्टि को उन्होंने आदर्श माना है। इस दृष्टि से नारी के उत्कृष्ट आदर्श-पातिव्रत्य की प्रतिष्ठा उन्होंने अपने नारी पात्रों के माध्यम से की है। तुलसीदास के सम्मुख भक्ति एवं चित्रण निष्ठा के आदर्शों का स्थापना की तथा एक विघटित समाज को संगठित करने का दायित्व था। राम भक्ति उनकी आदर्शवादिता का अभिन्न अंग थी। उनके नारी-पात्रों पर भी इस दृष्टि का प्रभाव स्वाभाविक है। तुलसीदास की पात्र-प्रस्तुति पर अध्यात्म रामायण का भक्तिपरक प्रभाव दृष्टिगम्य है।

कंबन तथा तुलसीदास ने आधार काव्य के अनुसार नारी के पातिव्रत्य के आदर्श की सुदृढ़ प्रतिष्ठा की है, दोनों कवियों ने साथ-साथ पुरुष के संयम पर भी जोर दिया है। कंबन ने व्यक्तिगत एवं वर्गीय पात्रों के अतिरिक्त मानवेतर प्राणिजगत के द्वारा भी पातिव्रत्य दाम्पत्य विषयक आदर्शों की स्थापना की है। सद्संस्कारों से हीन राक्षसियों में इसकी प्रतिष्ठा की है। तुलसीदास ने पात्रों के अतिरिक्त, उपदेश, सैद्धान्तिक विवेचन आदि अन्य माध्यमों द्वारा इसकी पुष्टि की है। भारतीय नारी जीवन का सांस्कृतिक आधार है—उसका पातिव्रत्य। कंबन और तुलसीदास ने उक्त प्रकार अपने काव्य में इसकी महत्ता स्वीकार की है।

कंबरामायण और तुलसीरामायण में चित्रित राम कथा के मूल पात्रों पर इनके समकालीन स्थानीय संस्कृति की भी परोक्ष छाप दृष्टिगोचर होती है। कंबन के चित्रण का आधार तमिल प्रदेश की लोक बाला है जिसे विचरण, कलाओं के अभ्यास आदि के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त थे। नारी पात्रों की साजसज्जा आचार आदि के वर्णन में स्थानीय रंग शहरा है। कंबन ने अपने बहत्तर महाकाव्य में लोकजीवन के विशद चित्रण के अंतर्गत अपने समकालीन नारी जीवन के वैविध्य एवं विचार को उतारा है। विभिन्न भू-भागों की लोक बालाओं के कार्य, मनोरंजन आदि के वर्णनों के द्वारा उनके वर्गीय पात्रों के व्यापार क्षेत्र में विस्तार आ गया है। तुलसीदास के द्वारा नारी-पात्रों के चित्रण में अभिव्यक्त पारिवारिक एवं सामाजिक मर्यादाएं परोक्षत: उनके समकालीन समाज में नारी की वस्तुस्थितियों की व्यंजना करती हैं। उन्होंने भी राजपरिवार के शुभाशुभ के साथ अपने वर्गीय पात्रों के घनिष्ठ संबंध पर स्वल्प प्रकाश डाला है। रामायण की मुख्य कथा राजपरिवार की है और उसके पात्रों का ढांचा पूर्व निश्चित है। इस कारण कंबन तथा तुलसीदास की अपने समकालीन नारी जीवन की वास्तविक दशाओं के प्रकाशन के लिए कम अवकाशप्राप्त है। फिर भी उस सीमा के अंतर्गत कंबन ने जिन संपन्न स्थितियों को, जीवन में प्रत्यक्ष देखा था, उनको अंकित करने की चेष्टा की है। तुलसीदास ने अपने समकालीन जीवन में (अनुभूत) नारी की अरक्षित दशा के लिए एक निवारण के रूप में नारी पर बंधन की आवश्यकता प्रकट की है।

तुलसीदास शास्त्रोक्त धर्म के कट्टर अनुयायी थे। उन्होंने नारी के विवाह आदि अवसरों पर नारी पात्रों द्वारा संपन्न होने वाले लौकिक तथा धार्मिक संस्कारों, प्रथाओं आदि पर आलोक डाला है। ऐसे प्रसंगों पर कंबन की दृष्टि उनके सामूहिक व्यापारों पर अधिक जमी हुई है।

कथा प्रसंगों की व्याप्ति एवं संक्षिप्ति कंबन तथा तुलसीदास के चित्रण में दृष्टिगम्य एक मुख्य अंतर है। कंबन ने कहीं-कहीं भूल से भी अधिक विस्तार से काम लिया है। नारी पात्रों से संबंधित कथा-प्रसंगों के प्रति तुलसीदास की दृष्टि अधिक राम-सापेक्षित रही है। राम-महिमा के प्रकाशन को दृष्टि में रखकर उन्होंने अपने नारी पात्रों का विकास किया है। शूर्पणखा, अहल्या, तारा, ताटका आदि नारीपात्रों पर्णद के तुलसीदास की संक्षिप्तता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

कंबन के द्वारा अपने व्यक्तिगत एवं वर्गीय नारी पात्रों के विरह, प्रेम आदि का चित्रण (तमिल प्रदेश के पंच भूभागी जीवन व्यापारों की परम्परा के अनुरूप) 'अहम्' (अंर्तगत) के चित्रण की तमिल की प्रचलित प्राचीन साहित्यिक परंपरा से अंशतः प्रभावित है। भक्त एवं संत कवि तुलसीदास की प्रवृत्ति ऐसे वर्णनों की ओर उन्मुख नहीं हुई है।

कंब रामायण और तुलसीरामायण के नारी पात्रों के मानसिक व्यापार तथा स्थितियों का चित्रण (वाल्मीकि रामायण के नारी पात्रों की भांति) भारतीय संस्कृति की नारी विषयक सामान्य मान्यताओं से आबद्ध है। लोकानुभव सिद्ध मनोवैज्ञानिक तत्वों के आधार पर दोनों कवियों ने नारी हृदय की सहज गति को गहराई के साथ उभारा है। दोनों का चित्रण समान रूप से सशक्त है।

मौलिक उपलब्धियां :

सीता के चरित्र में वाल्मीकि के मूल आधार पर अधिक आदर्श एवं दैवीपन की प्रतिष्ठा करके कंबन ने उसे एक आदर्श मानवी के रूप में प्रस्तुत किया है तथा लोकमाता के रूप में उसके दैवी अंश पर अधिक प्रकाश डाला है। तुलसीदास की सीता, अलौकिक सिद्धियों से संपन्न राम रूपी परम को चालित करने वाली आद्या शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है। उसमें कवि के समकालीन युगीन संस्कारों की भी प्रतिच्छाया है। दोनों कवियों के द्वारा सीता के पूर्व राम का नाटकात्मक चित्रण उनकी मौलिक नाटकात्मक कवि प्रतिभा का प्रकाशक है। कंबन तथा तुलसीदास ने आधार काव्यों में अभिव्यक्त कौशल्या की कतिपय मानव सहज दुर्बलताओं का प्रकाशन नहीं करके एक प्रकार से पात्र का नव संस्कृतिकरण सा कर दिया है। कंबन की प्रस्तुति अधिक सांकेतिक है। तुलसीदास ने अध्यात्म रामायण के आधार पर ब्रह्मज्ञानी के रूप में उसे प्रस्तुत किया है। दोनों कवियों ने कैकेयी को परिस्थिति के शिकार के रूप में अधिक उभारा है। तुलसीदास ने उसकी बौद्धिक योग्यताओं पर भी अधिक प्रकाश डाला है। अपनी भूल के लिए उसके पश्चाताप एवं अपराध बोध की ओर कवि ने संकेत किया है। कंबन ने राम के साथ सुमित्रा के स्नेहस्निग्ध संबंध का प्रकाशन एक दो मौलिक प्रसंगों पर किया है। तुलसीदास ने उसकी कलाकारी योग्यताओं पर प्रकाश डाला है।

मंथरा के मानसिक कौशल को विशेषरूप से तुलसीदास ने उभारा है। शूर्पणखा में कंबन तथा तुलसीदास ने रूप चेतना की प्रतिष्ठा की है। अहल्या के प्रति कंबन की दृष्टि अधिक उदार है। तुलसीदास की दृष्टि में उसका उद्धार अंयत्र उल्लेखनीय, राम की कृपा का प्रकाशक एक प्रसंग है। कंबन के द्वारा तारा तथा मंदोदरी की पात्र-परिणति पातिव्रव्य के सांस्कृतिक मूल्यों का सुदृढ़ स्थापक है। तारा का वैधव तथा मंदोदरी का सहमरण पातिव्रत्य के बल में कवि की अटल निष्ठा को प्रकट करते हैं। तुलसी रामायण में परिणति भी राम महिमा के प्रकाशक के रूप में है। (अध्यात्म रामायण के श्री आधार पर) मंदोदरी की मानसिक योग्यताओं का उद्धारन तुलसीदास की मौलिक विशेषता है। धान्य मालिनी तथा मंदोदरी के वात्सल्य का मार्मिक प्रकाशन कंब रामायण में हुआ है। तुलसीरामायण में सुनयना एवं मैनावती आदि के वात्सल्य का चित्रण कवि की अपनी उद्भावना है। (अंशतः अध्यात्म रामायण के आधार पर) ताड़का, त्रिजटा, स्वयंप्रभा आदि पात्रों में राम भक्ति अथवा रामकृपा से विवेक के जागरण की प्रतिष्ठा में उनकी निजी कवि-दृष्टि परिलक्षित है।

सती तथा पार्वती पातिव्रत्य के प्रतिष्ठापन की दृष्टि से महत्व रखने वाले ऐसे नारी पात्र हैं जिसके द्वारा तुलसीदास ने नारी हृदय के मर्म की भव्य झांकियां उपस्थित की है। वर्गगत नारी पात्रों के सामूहिक एवं मानसिक आचरण कवियों की निजी कल्पना से निःसृत है। कंबन ने इन वर्गगत पात्रों के द्वारा भी पातिव्रत्य का प्रतिष्ठपन किया है। सामान्यतः कुलीन संस्कारों से हीन मानी जाने वाली राक्षसियों में भी इसे स्थापित किया है।

कंबन तथा तुलसीदास के द्वारा, नारी पात्रों के उद्घाटन में आदर्श की ओर उनकी उन्मुख्ता एवं उनकी परिष्कृत अभिरूचि अभिव्यंजित है। तुलसीदास का चित्रण उनकी भक्ति भावना से प्रेरित है। मूल से पाए जाने वाले कुछ व्यतिमान उनके अपने-अपने क्षेत्रीय संस्कृति के भेदों के कारण है; कुछ उनके व्यक्तिगत स्वभाव के अंतर के कारण हैं।

नारी के प्रति दोनों कवियों की दृष्टि :

नारी के प्रति कंबन तथा तुलसीदास के दृष्टिकोण की भूमिका में उनका व्यक्तिगत स्वभाव, परिस्थितियां पूर्ववर्ती मान्यताएं आदि तत्व निहित हैं। इस विषय में इन दोनों की सामान्य दृष्टि भारतीय जनजीवन में प्रचलित पातिव्रत्य संबंधी विचारों से प्रेरित है। पातिव्रत्य की उत्कृष्टता अथवा निकृष्टता के आधार पर नारी, कवियों की दृष्टि में व्यक्तिगत रूप में सम्माननीय अथवा निन्दनीय हैं। कंबन तथा तुलसीदास नारी के पातिव्रत्य को समाज सापेक्षित धर्म के रूप में मना है अर्थात् सतियों के बल पर समाज टिकता है अथवा उजड़ता

है। कंबन का कथन है कि (1-2-59) ''स्त्रियों के पतिव्रत्य पर काल-वृष्टि भी टिकी हुई है''। उनकी दृष्टि में पातिव्रत तपोबल से भी उत्कृष्ट है। तुलसीदास का कहना है कि (3-5-7) ''सहज आपवनि नारि पति सेवत सुभ गति लहई। जस गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय''।

कंबन जिस स्वतंत्र एवं स्वालंबी समाज के वासी थे उसके समक्ष नारी की सुरक्षा एक विकट समस्या नहीं थी। स्वभाव से वे सौंदर्य चेतना एवं लोकिक रुचि से संपन्न थे तथा एक विलासमयी सामग्री जीवन के द्रष्टा (अभ्यत) थे नारी के प्रति उनकी दृष्टि सामान्यत: सम्मानपरक ही नहीं वरन् कुछ सीमा तक विलासितापरक भी हैं। साथ यह भी स्मरणीय है कि कंबन काम को जीव मात्र की एक सहजवृत्ति के रूप में मानते हैं। वे नारी में उद्धामकाम के विकास का डटकर वर्णन करते हैं। उनकी दृष्टि में काम के साधन-रूप में नारी निन्दनीय नहीं है। नारी-सौन्दर्य के प्रति कंबन की चेतना विशेष उल्लेखनीय है। संत एवं साधक तुलसीदास की दृष्टि इससे एकदम भिन्न थी। काम के पोषक के रूप में उन्हें नारी से चिढ़ थी। कंबन रामायण में दशरथ (2-3-17) तथा राम (3-5-44) के द्वारा दशरथ (2-3-17) नारी को विश्वास के अयोग्य बताते हुए कहे हुए उद्‌गार तथा इस प्रकार के कुछ अन्य कथन मिलते हैं जो कि स्वल्प संख्यक हैं। ये एक प्रकार से कविमानस पर पारंपरिक प्रभावों को प्रकट करते हैं। प्रसंग सापेक्षिकता के कारण इनका स्वर मंद है। दूसरी बात यह है कि ऐसी टिप्पणियां कवियों की नारी विषयक दृष्टि का पूर्ण प्रतिपादन नहीं कर सकती हैं।

कंबन रामायण में अहल्या जैसे पात्र कवि के द्वारा प्रदत्त उदात्तता में उनकी उदारता की एक झांकी मिल जाती है। राम उसकी निर्दोषता मानकर उसे उसके पति के पास ले जाकर सौंपते हैं। इस प्रकार देखा जाता है कि नारी के प्रति सामान्यत: सम्मान एवं सहानुभूतिपरक थी एवं उसके बाह्य सौन्दर्य के प्रति भी सचेत रही है।

तुलसीदास उस विशाल क्षेत्र के निवासी थे जो सांप्रदायिक हिंदू धर्म के शास्त्रीय विधानों की विकास भूमि थी। कालान्तर में बदलती हुई युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप इन विधानों ने नारी जीवन पर जो प्रतिबंध लगाए थे; उनसे संबंधित पारंपरिक मान्यताओं का प्रभाव उनके कवि मानस पर पड़ना स्वाभाविक था। तुलसीदास साधक, भक्त एवं कवि थे। साधक के रूप में नारी को एक अवरोधक तत्व मानने की वृत्ति स्वाभाविक है। उनकी समकालीन परिस्थितियां चारित्रिक ह्रास की थीं, एवं इस योग्य नहीं कि नारी को अधिक स्वतंत्रता दी जाए। स्वभाव से वे संत पुरूष थे। भक्ति के प्रचारक के रूप में वे स्त्री-पुरूष का अंतर नहीं मानने वाले थे। इस प्रकार तुलसीदास की नारी संबंधी धारणा के मूल में विविध शक्तियां हैं।

तुलसीदास की नारी पर की गई (3-36-4) राखिअ नारि जदपि उर माहीं॥ जुवति शास्त्र नृपति बस नाहिं (3-44) अवगुन मूल सूनप्रद प्रमदा मन दुख खानि ''(14-4)'' जिमि सुतंत्र भयें बिगरहिं नारि ''(5-503)'' ढोल गवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥ आदि उक्तियां उपरोक्त परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में विचारणीय हैं। ये तथा इस प्रकार के कुछ अन्य कथन तुलसीदास की नारी विषयक दृष्टि का पूर्ण प्रतिनिधि नहीं हैं। इनमें भी कुछ प्रसंग सोपक्षित है कुछ पारंपरिक उद्‌गारों के अनुवाद हैं। इस आदर्श स्रष्टा को अपनी समकालीन स्थिति को देखकर कभी उग्र होना पड़ता है।

नाई के प्रति तुलसीदास की दार्शनिक दृष्टि भी उल्लेखनीय है। एक रूप में वह उद्‌भव स्थिति संहारकारिणी आदि शक्ति है तो दूसरे रूप से वह डुबाने वाली माया रूपिनी है। विद्या अभवा अविद्या की व्याप्ति के अनुरूप नारी कवि की श्रद्धा एवं सहृदयता का स्चल्पा भास (1-250)'' डगि न संभु सरासुनु कैसे, कामी वचनु सतीमन जैसे सहज एका किन्ह के भवनु कबहुं कि नारि स्रष्टाहिं।'' (1-101-2) ''कतविधि सृजी नारी जगमाहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं। ''(4-8-4)'' मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि मिलावन करसि न काना। आदि कथनों में मिल जाता है। उनके द्वारा नारी पात्रों के चित्रण से विदित है कि दुराचार के कारण नारी उनकी निंदा एवं घृणा की पात्री हैं तथा सदाचार से प्रशंसा का पात्र। रामोन्मुख होना उनके आदर्श की नारी की एक योग्यता है।

कंबन तथा तुलसीदास की नारी विषयक दृष्टि, पातिव्रत्य से सापेक्षित है। दोनों कवि पारंपरिक भारतीय मान्यता के अनुरूप, इस आधार पर नारी की श्लाघा करते हैं। नारी सौंदर्य के प्रति कंबन की दृष्टि रसिकतापरक है जबकि तुलसीदास की दृष्टि शील संयम की मर्यादाओं से आबद्ध है। कंबन की कविदृष्टि कट्टरता की चर्चा से दूर है। तुलसीदास की दृष्टि भी कट्टर नहीं है, दर्शक की दृष्टि भेद से उसके सही रूप पर संदेह पड़ने की संभावना है।

कंबन और तुलसीदास भी सामान्यत: काव्यों में चित्रित नारी के प्रति पारंपरिक निंदा स्तुतिपरक दृष्टिकोणों से सभावित हैं। इन दोनों कवियों की नारी पात्रों की प्रस्तुति अंशत: दो भिन्न युग एवं क्षेत्रों के जीवन मूल्यों पर आधारित है : इनसे दोनों कवि प्रभावित हैं। आशा है कि कवियों के नारी पात्रों का यह तुलनात्मक अध्ययन उन मूल्यों को एवं कवियों के व्यक्तित्वों को समझने में सहायक होगा।

सहायक ग्रंथ:

हिंदी

हनुमान प्रसाद पोद्दार	(1963)	श्री रामचरित मानस, गीता प्रेस	गोरखपुर
विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	(19...)	तुलसीरामायण (काशीराज संस्करण)	
तमिल : गोपाल कृष्णमाचारी, वै. मु. (1993)		कंब रामायण,	चेन्नै
कामिल बुल्के :	1950	रामकथा,	प्रयाग
कृष्णदत्त अवस्थी	1974	भारतीय वाड्मय में सीता का स्वरूप	इलाहाबाद
गजानंद शर्मा	1972	भक्तिकालीन काव्य में नारी	इलाहाबाद
ज्ञानवती द्विवेदी	1970	गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि में नारी और मानव जीवन में उसका महत्त्व	
डॉ नरेंद्र	1974	रामचरितमानस तुलनात्मक अध्ययन	दिल्ली
प्रेमशंकर	1077	रामकाव्य और तुलसी	दिल्ली
बलदेव प्रसाद मिश्र	1952	भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास की देन	नागपुर वि.वि.
भागीरथ मिश्र	1954	तुलसी रामायण	इलाहाबाद
मलिक मुहम्मद	1971	वैष्णव भक्ति आन्दोलन का अध्ययन	दिल्ली
राजपति दीक्षित	1952	तुलसीदास और उनका युग	काशी
राधाकुमुध मुखर्जी	1975	हिंदू सभ्यता	दिल्ली
रामेश्वर दयाल अग्रवाल	1973	कंब रामायण और रामचरित मानस	मेरठ
रामचन्द्र शुक्ल	1943	गोस्वामी तुलसीदास	काशी
रामधारी सिंह दिनकर	1956	संस्कृति के चार अध्याय	दिल्ली
श्यामसुन्दर व्यास	1963	हिंदी महाकाव्यों में नारी चित्रण	मथुरा

तमिल

इस्माइल मु. मु.	1982	कंबन कंड रामन्	मद्रास
कमला शंकरन्		कंबन कैवण्णम्	मद्रास
चाण्डिल्यन्	1985	कंबन कंड पेण्कल	मद्रास
के. के. पिल्ले	1972	तमिलग वरलारु मक्कलुम पण्पाडुम्	मद्रास
रामकृष्णन. एस.	1965	करपिन कनलि	मद्रास
रामचन्द्र दीक्षित	1941	मून्ड्राम् कुलोत्तुंगन	मद्रास
वरदराजनार	1980	तमिल इलक्कियं वरलारु	दिल्ली

3841 HA/02—6

English :

Altekar A.S.	1956	The position of women in Hindu Civilization	Banaras
Arokiya Swamy	1972	The classical age of the Tamils	Universty of Madras
Bahirbadilal Shrivastav		The Mogul Empire	Agra
Balasubramaniam, C.		The status of women in Tamilnadu during Sangam Age,	Madras
N. Subramanian (Thesis)	1970	A critical study of women characters in Kamba Ramayanam, University of Madras	
Indra	1955	The Status of women in Ancient India	Banaras
Iyer V.V.S.	1970	Kambaramayana A study	Bombay
Madhvand & Majumdar R.C.	1953	Great women of India	Almora
Mary Martin B.R.	1964	Women in Ancient India	Varansi
Nilakanta Shstri K.A.	1975	The Cholas, University of Madras	
Nilakanta Shstri K.A.	1976	A History of South India, University of Madras	
Padmini Sen Gupta		Women in India	
Paramasivanandam	1960	Tamilnadu through Ages	
Prasannaalakshmi M.J.	1973	(Thesis) The position of women in Tamilnadu from Sangam age to Ninth Century, University of Madras	
Srinivasa Iyer V.S.	1952	Lectures on Ramayana, University of Madras	
V. Raghvan	1980	The Ramayana Traditions in Asia	
Hari Rao V.N.		History of India	

गुरु कृपा, प्लांट नं. 790, रामासामी सलाई, के.के. नगर, चैन्नई-600078

संघ की राजभाषा के स्वर्ण जयन्ती वर्ष की प्रतिष्ठा में एक विहंगावलोकन

हिंदी के मूर्धन्य तथा प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. शिव मंगल सिंह 'सुमन' का 27 नवम्बर, 2002 को निधन हो गया। वे प्रगतिशील काव्यधारा के प्रतिनिधि थे। उनके निधन से हिंदी जगत को हुई क्षति की भरपाई संभव नहीं है। डॉ. सुमन का यह लेख 'राजभाषा भारती' के राजभाषा स्वर्ण जयंती विशेषांक में प्रकाशित हुआ था। उनकी स्मृति में उनके इस लेख को पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।

—डॉ. शिव मंगल सिंह "सुमन"

संघ की राजभाषा के रूप में राष्ट्र की अस्मिता की प्रतीक हिंदी की प्रतिष्ठा का यह स्वर्ण जयन्ती वर्ष है। किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र की पहचान के लिए तीन अवयवों की आवश्यकता होती है—उसका कोई झण्डा हो, कोई राष्ट्रगान हो और कोई राष्ट्रभाषा हो। राष्ट्र के कर्णधारों ने हमारे झण्डे में एक पार्टी के प्रतीक चर्खे को हटाकर उसके स्थान पर देवानाम प्रिय अशोक के शांति और करुणा के प्रतीक चक्र की स्थापना कर उसे सार्वभौम बना दिया। राष्ट्रगान गुरुदेव की कृपा से हमें प्राप्त हो गया। भाषा के मामले में हम चूक गए। अन्यथा स्वतंत्रता की प्रतिष्ठा के मंगलमय मुहूर्त में झण्डे और राष्ट्रगान के साथ राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को भी मान्यता मिल जाती तो किसी प्रकार का वाद-विवाद ही न उठता क्योंकि हमारे स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्र के जागरण का मूलाधार यही भाषा थी। उस समय देश बंटवारे की रक्तस्नात विभीषिका से इतना संत्रस्त हो उठा था कि स्वतंत्र राष्ट्र के इन तीनों अवयवों की सहज भाव से स्वीकृति नितान्त सम्भाव्य थी। विलम्ब हो जाने से तर्क-वितर्क की गुंजाइश निकल आई। सच पूछा जाए तो हम चूक गए।

खैर, बाद में जब हिंदी को भारत संघ की भाषा या राष्ट्रभाषा बनाने का तथा उसे संविधान में स्थान देने का प्रश्न उठा तो उस समय उसके विरोध के कुछ स्वर सुनाई तो दिए पर अधिक मुखर नहीं हो पाए। अन्ततोगत्वा 14 सितम्बर, 1949 को यह निर्णय लिया गया कि सार्वभौम सत्ता सम्पन्न गणतन्त्र की प्रतिष्ठा 26 जनवरी, 1950 से हिंदी भारत की राजभाषा का आसन ग्रहण करेगी, परन्तु हीन भावना के संकेत रूप में साथ-साथ अंग्रेजी के यथावत प्रयोग को भी मान्यता मिल गई, हिंदी को सक्षम बनाने के लिए 15 वर्ष का समय दिया गया। इस कालावधि में राष्ट्रपति ने सरकारी कामकाज में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने की दृष्टि से 27 मई, 1952 तथा दिसम्बर 1955 में भाषा सम्बन्धी दो अध्यादेश जारी किए। इन दोनों अध्यादेशों में राज्यों के राज्यपालों, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के अभिपत्रों के लिए हिंदी का प्रयोग प्राधिकृत किया गया। प्रशासनिक रिपोर्टों, संसद की कार्यवाही की रिपोर्टों, सरकारी संकल्पों और विजारी नियमों के निर्वाह हेतु तथा अन्तरराष्ट्रीय संगठनों के साथ पत्र-व्यवाहर के लिए हिंदी को प्राधिकृत किया गया। वस्तुतः 15 वर्ष की अवधि अहिंदीभाषी राज्यों को हिंदी में कामकाज करने की कुशलता प्राप्त करने के हेतु दी गई थी। संविधान सभा के अध्यक्ष तथा भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने स्पष्ट रूप में कहा था कि संविधान में उल्लिखित 15 वर्ष की अवधि वस्तुतः उनके लिए है जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है। हिंदीभाषी राज्यों को तो तत्काल हिंदी माध्यम से सारा कामकाज करना प्रारम्भ कर देना चाहिए।

कायदे से इस अवधि के समाप्त होते ही राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग दृढ़ता से कर देना चाहिए था। इस बीच कुछ भ्रान्त धारणाओं से और कुछ अति उत्साही हिंदी प्रेमियों की गलती से भारत के कुछ प्रान्तों में हिंदी के विरुद्ध आवाज उठी। अहिंदी प्रान्तों में हिंदी के विरुद्ध आवाज उठते ही तत्कालीन प्रधानमंत्री ने इसका समाधान यह कह कर किया कि "जब तक एक भी अंहिदी भाषी राज्य नहीं चाहेगा, हिंदी किसी पर लादी नहीं जाएगी और उसके साथ अंग्रेजी में कामकाज चलता रहेगा।" जल्दबाजी में किया हुआ यह निर्णय राष्ट्र के लिए आज भी विडम्बना बनकर रह गया है, जिसका परिणाम

हम सब भुगत रहे हैं। दरअसल जहाँ कहीं राष्ट्र की अस्मिता और एकात्मता का प्रश्न हो वहां दृढ़ता से उसका पालन करना चाहिए और छोटे-मोटे विरोध का सामना करने का साहस करना चाहिए। इतिहास गवाह है कि कमालपाशा को भी भाषा-नीति की इसी प्रकार की समस्या का सामना करना पड़ा था। जब उसके हाथ में तुर्की शासन की बागडोर आई तो उसने राज्य के अधिकारियों को बुलाकर पूछा कि तुर्की भाषा के माध्यम से कामकाज चलाने में कितने वर्ष लगेंगे। उत्तर मिला कि कम से कम 10 वर्ष लगेंगे। कमालपाशा ने तुरन्त आदेश दिया कि— "यह समझा लिया जाए कि दस वर्ष अगले दिन 10 बजे समाप्त हो रहे हैं। कल प्रात: 10 बजे से सारा कामकाज तुर्की भाषा में ही होगा।" और दूसरे ही दिन तुर्की राजभाषा हो गई। हमें तो 15 वर्षों का समय दिया गया था। इतना ही नहीं संविधान के अधीन हिंदी प्रयोग के बारे में 27 मई, 1952, 3 दिसम्बर, 1955 एवं 27 अप्रैल, 1960 को क्रमश: राष्ट्रपति के तीन आदेश भी प्रकाशित कर दिए गए।

अहिंदी प्रान्तों में हिंदी के विरोध के लिए किसी सीमा तक हिंदी के अतिउत्साही प्रेमी ही जिम्मेदार हैं जिन्होंने राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को प्रतिष्ठित करने के लिए उसे अन्य प्रादेशिक भाषाओं से श्रेष्ठ प्रमाणित करने का प्रयत्न किया। वस्तुत: भाषा और साहित्य की दृष्टि से बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ आदि भाषाएं बीस ही बैठेंगी। हिंदी तो अपने विकासक्रम और व्यापकता से कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक किसी न किसी रूप में समझी जाने वाली व्यावहारिक भाषा बन गई है। इसमें देश के चारों दिशाओं में रहने वाले दिलों को जोड़ने की जबर्दस्त ताकत है और साथ ही सशक्त-सामर्थ्य, भारतीयता की पहचान करने की। तीर्थों और धर्म स्थानों में भी यह राष्ट्र के विभिन्न भाषाभाषियों को एक दूसरे से वार्तालाप करने की टूटे-फूटे शब्दों में ही सही माधम बन जाने का आधार बन जाती है। प्रात:स्मरणीय माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दों में "इसके बचपन के दिन सन्तों की जीभ की गोद में दुलार से बीते हैं, सन्तों की कलम पर खेल के इसने तारूण्य पाया है और सन्तें की अखिल भारतीय यात्राओं में अखण्ड भारत की वाणी बनने का इसे अवसर प्राप्त हुआ है। सिंहासनों द्वारा तिरस्कृत और सन्तों द्वारा प्रचारित भाषा ही जनता की भाषा है।" नामदेव, कबीर दादू, रैदास, रज्जब, शेखफरीद और गुरूनानक के उपदेशों की शक्ति से यह समन्वित है। पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी तो आचार्य बल्लभाचार्य को राष्ट्रभाषा का प्रथम प्रचारक मानते थे। तेलुगु भाषा-भाषी होते हुए भी उन्होंने अपने इष्टदेव के समस्त तीर्थों का भ्रमण और उनके जन्मस्थान की भाषा ब्रज का सारे भारत में प्रचार किया। निश्चय ही यदि वल्लभाचार्य न होते तो सूरदास, नन्ददास, कुम्भनदास, भूषण, मतिराम, बिहारी, रसखान और घनानन्द भी न होते। उसके खड़ी बोली रूप के प्रतिष्ठापका में स्वामी दयानन्द, केशवचन्द्र सेन, राम मोहन राय, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी और विनोबा भावे के नाम उल्लेखनीय हैं। गांधीजी ने अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' में सन् 1909 में लिखा था कि—"हमें अपनी सभी भाषाओं को उज्ज्वल और सुन्दर बनाना चाहिए। हमें अपनी भाषा में ही शिक्षा लेनी चाहिए। सबसे पहले तो धर्म की शिक्षा या नीति की शिक्षा दी जानी चाहिए। हर एक पढ़े लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा का, हिंदू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को फारसी का और सबको हिंदी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिंदुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों और पारसियों को संस्कृत सीखनी चाहिए। सारे हिंदुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिंदी ही होनी चाहिए, उसे उर्दू या देवनागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए।" ('हिंदू स्वराज' शिक्षा-पृष्ठ 81)

इंदौर में आयोजित अखिल भारतीय हिंदी सम्मेलन के आठवें अधिवेशन 1918 में गांधी ने सबसे पहले हिंदी के राष्ट्रभाषा होने की घोषणा की थी। उन्होंने इसी अवसर पर इंदौर से दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार कार्य की शुरुआत की और आरम्भिक कार्य के लिए अपने सुपुत्र श्री देवदास गांधी, श्री हरिहर शर्मा, स्वामी सत्यदेव और पं. हृषिकेश शर्मा इत्यादि प्रचारकों को दक्षिण भेजा। तमिलनाडु के हिंदी प्रचारकों में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी प्रमुख थे। दूसरे महायुद्ध के पूर्व राजाजी के हाथों में मद्रास की बागडोर आई तो मुख्यमंत्री के रूप में उन्होंने मद्रास की दोनों तत्कालीन व्यवस्थापिका सभाओं में हिंदी विरोध का दृढ़तापूर्वक सामना करते हुए हिंदी के राष्ट्रभाषा होने का प्रस्ताव कराया था और कहा था, सरकार की नीति इस सम्बन्ध में यही है कि हिंदी का, जो भारत के अधिकांश भागों में बोली जाती है, काम चलाऊ ज्ञान हो जाए, ताकि मद्रास प्रदेश के विद्यार्थी इस योग्य हो जाएं कि दक्षिण तथा उत्तर में सुविधापूर्वक विचार विनियम कर सकें। बाद में वे हिंदी के कुछ प्रमादी महापुरुषों के कारण कुछ रुष्ट भी हो गए थे। यों तमिलनाडु में हिंदी विरोध के और भी कारण थे। वहां के ब्राह्मण विरोधी अन्नादुराई आदि के आंदोलन स्वरूप संस्कृत का विरोध होने लगा था। यहाँ तक कि तमिल से संस्कृत शब्दों के बहिष्कार करने का आंदोलन चल पड़ा

था जिसके अन्तर्गत 'नमस्कारम्' के स्थान पर 'वडक्कम्' आदि का प्रयोग होने लगा था। इसी संस्कृत विरोध का खामियाजा वहां हिंदी को भी भुगतना पड़ा। अन्यथा दक्षिण की अन्य किसी प्रान्तीय भाषा मलयालम, कन्नड़, तेलुगु आदि में हिंदी का विरोध नहीं।

तीसरा प्रश्न त्रिभाषा फार्मूला का है। यहाँ भी हिंदी भाषा-भाषी अन्य अहिंदी भाषा-भाषियों के असन्तोष का कारण बने हुए हैं। केरल के एक प्रसिद्ध कवि ने कहा था कि हम तो त्रिभाषा फार्मूला कर बड़ी निष्ठा से पालन करते हैं। पहले प्राइमरी कक्षा तक मातृभाषा और फिर अंग्रेजी एवं हिंदी अनिवार्य रूप से मैट्रिक तक पढ़ते हैं पर हिंदी भाषा-भाषी बन्धु अन्य किसी भी प्रादेशिक भाषा या राज्यभाषा को नहीं पढ़ते। इसीलिए यदि हिंदी अपने को अन्य भारतीय भाषाओं की बड़ी बहन बनने का दावा करती है तो संयुक्त कुटुम्ब में बड़े होने के उत्तरदायित्व का उसे निर्वाह करना चाहिए। संयुक्त कुटुम्ब में बाबा सभी को डाँट फटकार सकते हैं पर सबसे अधिक नुकसान में वही रहते हैं, अगर घर में एक किलो दूध आता है तो जब तक हर बच्चे को दूध न मिल जाए तब तक बाबा दूध नहीं पी सकते। इसी प्रकार बड़ी बहन होने के नाते हिंदी को अपनी अन्य बहनों (प्रान्तीय भाषाओं) को दूध पिलाकर बचे तो पिए अन्यथा पानी पीकर रह जाना चाहिए। तभी उसकी राजभाषाओं में आत्मीयता स्थापित हो सकती है और हिंदी सम्पर्क भाषा के रूप में अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकती हैं।

इस बीच राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को सम्पन्न बनाने के लिए भारत सरकार के तकनीकी तथा वैज्ञानिक शब्दावली आयेग ने तथा केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने हिंदी में विज्ञान और तकनीकी शिक्षा की क्षमता विकसित करने के लिए पारिभाषिक शब्दावली के साथ हिंदी शिक्षण योजनाएं भी गठित की। औद्योगिक संस्थानों में, बैंकों आदि में हिंदी में काम करने के लिए हिंदी अधिकारियों की भी नियुक्ति की गई, जिसके क्रियाकलापों से सम्बन्धित स्मारिकाएं भी समय-समय पर प्रकाशित होती रहीं। यही नहीं अहिंदी भाषी अधिकारियों तथा कर्मचारियों को हिंदी में कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कराने के लिए प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ परीक्षाएँ प्रारम्भ की गई और उनके प्रोत्साहनार्थ एक अग्रिम वेतन वृद्धि की भी व्यवस्था की गई। यही नहीं हिंदी और अन्य प्रादेशिक भाषाओं में किसी प्रकार की ईर्ष्या या द्वेष को समाप्त करने के लिए सभी को राजभाषा की मान्यता दी गई और हिंदी को सम्पर्क भाषा के रूप में स्थान प्रदान करने का लाघव प्रयत्न किया गया, पर अंग्रेजी का प्रभुत्व हमारी मानसिकता पर इस प्रकार हावी बना रहा कि संसद द्वारा 18 जनवरी, 1968 को सर्वसम्मति से एक संकल्प पारित हो जाने पर कि संविधान की 'आठवीं अनुसूची' में दर्ज सभी भारतीय भाषाओं में 'संघ लोक सेवा आयोग' की परीक्षाएं होंगी जिसे आज तक लागू नहीं किया जा सका। यहां तक कि इस संकल्प को पारित करने के लिए पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह, पूर्व प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह, पूर्व उपप्रधानमंत्री चौधरी देवीलाल, तत्कालीन विपक्ष के नेता अटलबिहारी वाजपेयी, चार पूर्व उपराज्यपाल वीरेन्द्र वर्मा, यज्ञदत्त शर्मा, विश्वम्भरनाथ पाण्डे आदि तथा रामविलास पासवान, वैकुण्ठलाल शर्मा 'प्रेम', सोमपाल आदि सांसद, अनेक पत्रकार, साहित्यकार सर्वश्री विद्यानिवास मिश्र, कमलेश्वर कन्हैयालाल नन्दन आदि 12 मई, 1994 को प्रात: धरने पर बैठे, सबने एक स्वर से भाषाई संकल्प लागू करने की माँग की पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि इससे अंग्रेजी की मात्र अनिवार्यता समाप्त होती, अंग्रेजी नहीं। इससे केवल भारतीय भाषाओं को, परीक्षा का माध्यम बनने का समान अधिकार सुलभ हो जाता।

इसी प्रकार विदेशों में राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की प्रतिष्ठा के लिए पण्डित नेहरू के ही जमाने से भारतीय राजदूतावासों में सांस्कृतिक सहचारी (Cultural Attache) के रूप में हिंदी अधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था की गई। उन्होंने स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठा के लिए प्रसिद्ध कवि डॉ. हरिवंशराय बच्चन की विशेष कार्य अधिकारी (O.S.D.) के रूप में विदेश विभाग में नियुक्ति की गई जिन्हें अन्य देशों के साथ की गई राजनायिक संधियों (आर्थिक, राजनीतिक, सामरिक आदि) का मूलरूप हिंदी में सुरक्षित रखने का कार्यभार सौंपा गया। इसके लिए उन्हें I.F.S. 'B' प्रदान करने की सिफारिश की नई जिससे बच्चनजी के आत्मसम्मान को बड़ा धक्का लगा। उन्होंने मुझे पत्र में लिख भेजा कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय की प्राध्यापकी छोड़कर विदेश विभाग में काम करने का आग्रह पण्डितजी द्वारा न किया गया होता तो कल ही मैं इसे छोड़कर चल देता। हिंदी के अखिल भारतीय ख्याति के शीर्षस्थ सर्जकों को I.F.S. 'A' के योग्य भी नहीं समझा गया। इसी सिलसिले में मुझे नेपाल स्थित भारतीय राजदूतावास में सांस्कृतिक सहचारी (Cultural Attache) के रूप में नियुक्त किया गया था। विदेशों में किसी स्वतंत्र राष्ट्र की भाषा का क्या रुतबा होता है

3841 HA/02—7

इसका साक्षात अनुभव वहाँ हुआ। भारतीय गणतन्त्र दिवस 26 जनवरी, 1957 को हम लोग अन्य दूतावासों के अधिकारियों का स्वागत कर रहे थे। हमारे दूतावासों में तो अंग्रेजी का ही बोलबाला रहता है अतएवं रूसी दूतावास के कौंसलर श्री शोकलोव्ह का स्वागत करते हुए हमारे प्रथम सचिव ने बड़े तपाक से कहा कि–'Welcome to you on our Republic Day.' श्री शोकलोव्ह को हिंदी का ज्ञान था। उन्होंने बड़ी विनम्रता से हिंदी में कहा कि "कम से कम अपने राष्ट्रीय दिवस पर तो अपने राष्ट्र की भाषा में बोला कीजिए।" पाठक केवल कल्पना कर सकते हैं कि हम लोग इस विद्रूपता पर कैसे खिसियाए से एक दूसरे का मुंह ताकते खड़े रह गए होंगे। सार्वभौम सम्पन्न सत्तात्मक गणतंत्र का अपनी राष्ट्रभाषा का क्या महत्व और गौरव होता है इस ज्वलन्त सत्य से हम सर्वथा अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं। हमारी चमड़ी शायद इतनी मोटी हो गई कि ऐसे संवेदनात्मक तत्व हमारे मानस में किसी प्रकार की सिहरन नहीं पैदा कर पाते।

संघ की राजभाषा हिंदी की स्वर्ण जयन्ती वर्ष में सभी क्षेत्रों में राजभाषा हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने का हम संकल्प लें। साथ ही वर्ष में हम हिंदी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर अपने प्रमाद का प्रायश्चित भी करें।

❑❑

वैशाली : गणतंत्र और गणिका परम्परा

—डॉ० हरिनारायण ठाकुर

वर्द्धमान महावीर की जन्म-भूमि और भगवान बुद्ध की कर्मभूमि वैशाली जहां एक ओर अपने अंदर धर्म, अध्यात्म, करुणा और शांति का इतिहास छुपाए बैठी है, वहीं दूसरी ओर वृज्जियों और लिच्छवियों के शौर्य और पराक्रमपूर्ण राजनीतिक अतीत की कहानी भी। लिच्छवियों के गौरवशाली गणतंत्र के रूप में वैशाली प्राचीन भारत में सर्वाधिक प्रसिद्ध हुई, तो इसकी कला और संस्कृति भी सर्वोच्च सिद्ध हुई। कृषि और व्यापार के समृद्ध केन्द्र के रूप में इसका विकास हुआ, तो सुरुचि-सम्पन्न सौन्दर्य-बोध और सांस्कृतिक चेतना भी यहां के जन जीवन के शृंगार बने। राजनीति, धर्म और संस्कृत की समृद्ध परम्परा के बीच अम्बपाली का जगमगाता व्यक्तित्व स्त्री जीवन के विमर्श का भी एक प्राचीन अध्याय है।

वैशाली की गणतंत्रात्मक शासन-पद्धति, धार्मिक-क्रांति प्राकृतिक सम्पदा और इसके समृद्ध लोकजीवन पर इतिहास, संस्कृति और साहित्य के हजारों पृष्ठ भरे जा चुके हैं। फिर भी इसकी कहानी खत्म नहीं होती। पुरातात्विक खोज-अनुसंधानों, ऐतिहासिक प्रमाणों और साहित्यिक साक्ष्यों से भी अभी तक वैशाली की विशाल परम्परा की पहेली पूर्णत: नहीं सुलझाई जा सकी है। खुदाई के अवशेष शिलालेख, सिक्के, भांड, अभिलेख और प्राचीन साहित्यों के द्वारा इसके इतिहास पर प्रकाश डालने की कोशिशें होती रही हैं। बहुत सारे तथ्यों की जानकारी भी हुई है। किन्तु उतने ही विवाद भी फैले हैं। वैशाली के इतिहास और संस्कृति का सर्वाधिक विवादास्पद पक्ष है इसका काल-निर्धारण और इसकी गणिका (वेश्या) परम्परा। आइए, संक्षेप में इस पर विचार करें।

वैशाली गणतंत्र : बिहार की राजधानी पटना से 60-70 किलोमीटर उत्तर-पश्चिम और मुज्जफरपुर से लगभग 30 किलोमीटर पश्चिम गंगा और गंडक नदी के दोआब क्षेत्र में वैशाली का खंडहर फैला हुआ है। इसके दक्षिण में गंगा और उत्तर-पश्चिम में गंडक नदी बहती है। यही बसुकुंड, बासाढ़ गांव, मंगल पुष्करणी, वैशाली किला विश्व शांति-स्तूप आदि ऐतिहासिक स्थान और स्मारक हैं। अब यह अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन स्थल के रूप में विकसित है। प्रति वर्ष तीन चार दिनों तक वैशाली महोत्सव का आयोजन यहां का मुख्य आकर्षण है।

नामकरण : प्राचीन साहित्य और धर्मग्रंथों में वैशाली के दो नाम बताये गये हैं—वैशाली और विशाला। 'रामायण' और कतिपय पुराणों के अनुसार इस नगरी की स्थापना विशाल नामक राजा ने की थी। अत: इसका नाम उन्हीं के नाम पर वैशाली पड़ा। बौद्ध साहित्य के अनुसार चूंकि इस नगर को कई बार विशाल (बड़ा) करना पड़ा था; इसलिए इसका नाम विशाला पड़ा। इन दोनों नामों का आधार विशाल शब्द है, जिससे इसकी विशालता का बोध होता है। "विश" अथवा "वैश्य" के कारण भी यह नाम पड़ना संभव है, क्योंकि इतिहास में वैशाली का नाम कृषि एवं पशुपालन से जुड़ा हुआ है। महाभारत (9.38.4, 21; 13.25.44) में विशाल नामक नदी की चर्चा आती है, जो इस ओर बहती थी। संभव है, यह नामकरण उस कारण से भी हुआ हो। (वैशाली-दिग्दर्शन, पृ०-2) इस प्रकार वैशाली नाम प्राचीन इतिहास और साहित्य से जुड़ा है।

काल निर्धारण : स्पष्ट है कि वैशाली के निर्माण के पीछे इसकी विशालता तथा कृषि और वाणिज्य की समृद्धि है, जो इसकी प्राचीनता को भी द्योतित करती है। विद्वानों ने इसकी प्राचीनता की पड़ताल आर्यों के आगमन के पूर्व से ही की है। डॉ० योगेन्द्र मिश्र ने वैशाली के इतिहास को आठ काल-खंडों में बांटकर देखने की कोशिश की है। पहला खण्ड आर्यों के आगमन से लेकर इसकी 64वीं पीढ़ी तक के राजतंत्र का है। दूसरे खण्ड को आर्य राजाओं की 65वीं पीढ़ी से ई० पूर्व 725 तक की अवधि में देखने की कोशिश की गयी है। किन्तु इस कालखण्ड के राजाओं का विधिवत् इतिहास उपलब्ध नहीं है, न इस सम्बंध में किसी अन्य स्रोत से ही अधिक जानकारी मिलती है। अत: इसे 'अंधकार युग' कहा गया है। तीसरा खण्ड 'वृजि-संघ' का गणतंत्र काल है, जिसकी काल-सीमा ई०पूर्व 725 से 484 ई०पू० तक है। साहित्यिक-सांस्कृतिक दृष्टि से यही काल सर्वाधिक चर्चित और समृद्ध

है। चौथा भाग ई०पू० 484 से 140 ई०पू० तक का काल है; जिसमें वैशाली पर मगध-साम्राज्य का आधिपत्य होता है। ई०पू० 140 से 310 ई० तक का काल खण्ड वैशाली के पुनरुत्थान का काल है। परवर्ती छठा और सातवां काल-खण्ड गुप्त और गुप्तेतर राजाओं का काल है। आठवां और अंतिम काल तुर्क-अफगान राजाओं का काल है, जिसकी समय सीमा 1324 ई० से 1529 ई० तक निर्धारित की गई है। किन्तु वैशाली की परंपरा आर्य-परंपरा से भिन्न थी। अत: इस भू-भाग में आर्यों का शासन होना संदिग्ध है।

वैदिक और जैन साहित्य में गंगा नदी के उत्तर और गंडक के पूर्व के सम्पूर्ण भाग को 'विदेह' कहा गया है। विदेह का नाम राजा जनक और वैदेही (सीता) से जुड़ा होने से इसकी प्राचीनता और पौराणिक महत्त्व असंदिग्ध है। विदेह के पश्चिम में कोशल राज्य की सीमा थी। इसमें वैशाली की प्रत्यक्ष चर्चा कहीं नहीं मिलती। जाहिर है कि वैशाली की अन्तर्भुक्ति 'विदेह' में ही थी।

वैशाली की राजवंश : वैशाली के राजाओं और राजवंशों का इतिहास 'रामायण' और 'महाभारत' के अलावा कई पुराणों में भी मिलता है। प्रसिद्ध पश्चिमी विद्वान पार्जिटर ने अपने महत्त्वपूर्ण अनुसंधान में 33 राजाओं और राजवंशों की सूची दी थी। वैशाली के राजवंशों की चर्चा जिन सात पुराणों में है, वे हैं—विष्णु, गरुड़, वायु, भागवत, ब्रह्माण्ड, लिंग और मार्कण्डेय पुराण। वैशाली के 23वें राजा तृणविंदु और उनकी सुन्दर पत्नी अलम्बुषा के पुत्र विशाल (24 वें राजा) ने विशाला अथवा वैशाली का निर्माण किया। 'रामायण' के अनुसार इस सूची के अंतिम (33वां) राजा सुमति कोशल के राजा दशरथ और विदेह के राजा जनक के समकालीन थे। किन्तु डॉ० पुरुषोत्तम लाल भार्गव के अनुसार पार्जिटर द्वारा प्रस्तुत सूची में 1 से 23 तक के राजा सप्त-सिंधु प्रदेश के राजा थे, वैशाली के नहीं। डॉ० भार्गव के अनुसार ही यदि 24 वें राजा सुमति से भी वैशाली का इतिहास माना जाय, तो भी यह काल अत्यन्त प्राचीन ठहरता है। इस प्रकार पार्जिटर, डॉ० भार्गव और डॉ० योगेन्द्र मिश्र के मतों के निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि वैशाली का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। आरंभ में इसकी राजनीतिक व्यवस्था राजतंत्रात्मक थी। कालान्तर में यहाँ संघ और गणतंत्रात्मक शासन पद्धति का विकास हुआ। किन्तु सुमति के बाद और वृज्जियों (वृज्जि संघ) के पहले वैशाली का कोई निश्चित इतिहास प्राप्त नहीं है।

आर्येतर परम्परा : कहा जाता है कि वैशाली का गणतंत्र 'व्रात्य-संस्कारों' का संघ था, जो आर्य परम्परा से भित्त था। आर्यों ने अपने मतों को न मानने वाले लोगों को 'व्रात्य' कहकर उनकी निंदा की थी। वैशाली की स्थापना इन्हीं व्रात्य लोगों ने की थी। वैशाली के बीचोंबीच एक मंगल पुष्करिणी (बड़ा तालाब) थी, जो उनके मान-स्वाभिमान और गौरव की प्रतीक थी। "यह पुष्करिणी उस समय बनाई गई थी, जब वैशाली प्रथम बार बसाई गई थी। उसमें लिच्छवियों के उन पूर्वजों के शरीर का पूत गंध होने की कल्पना की गई थी, जिन्हें आर्यों ने व्रात्य करके बहिष्कृत कर दिया था और जिन्होंने अपने भुजबल से अष्टकुल की स्थापना की थी।"(आ० चतुर सेन-शास्त्री : वैशाली की नगर-वधू पृ०-23) विद्वानों के अनुसार प्राचीन भारत के निर्माण में भरत, कोशल और मगध—इन तीन गण-समाजों की निर्णायक भूमिका थी। इनमें भरतगण का सम्बंध प्राचीन वैदिक भाषा और संस्कृति से है।

इतिहासकारों पुसालकर ने भरतों के बारे में लिखा है— "ऋग्वैदिक गणों में भरत सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। सारे देश को उन्होंने अपना नाम दिया। ऋग्वेद के युग में वे सरस्वती और यमुना के बीच वाले प्रदेश में बसे हुए थे ऋग्वेद में सुदास और त्रित्सु के सन्दर्भ में उनकी उल्लेखनीय चर्चा हुई है। वे पुरुगण के शत्रु हैं, उनके राजा (गण-नायक) सरस्वती, दृषद्वती और आपया के तटवर्ती प्रदेश में, जो आगे चलकर कुरुक्षेत्र कहलाया, यज्ञ करते थे।" कालान्तर में भरतगण पुरुगण से मिल गये। तब 'कुरुगण' का निर्माण हुआ। "(दि वेदिक एज, ऐलन एण्ड अनविन, 1951, पृ०—245-46) इसी कुरुगण ने 'कुरुक्षेत्र' को यह नाम दिया। इस कुरुगण से सम्बन्धित युद्ध को 'महाभारत' इसलिए कहा गया है कि कुरुगण में भरतगण भी समाहित था। भरतगण यज्ञवादी संस्कृति का उपासक था। मगध गण इसका परम विरोधी था। वेद-विरोधी मत-मतांतरों का मुख्य केन्द्र मगध था।" (डॉ० राम विलास शर्मा : परंपरा का मूल्यांकन, पृ०-18)

मगध की आधारभूमि से ही जैन और बौद्ध धर्मों का प्रवर्त्तन हुआ, जिसने वैदिक विचारधाराओं का प्रबल विरोध किया। मगध सहित सम्पूर्ण पूर्वोत्तर भारत के राज्य वैदिक सीमा से बाहर थे। वेद (आर्य) विरोधी होने के कारण ही मगध को पवित्र वैदिक भूमि की सीमाओं से बाहर एक अपवित्र भूमि घोषित कर दिया गया और यह विश्वास फैल गया कि जो मगध (मगह) में मरेगा, उसे मुक्ति नहीं मिलेगी। इस प्रकार मगध, लिच्छवी, विदेह आदि गणराज्य व्रात्य-

संस्कारों के राज्य थे, जिनकी भाषा और संस्कृति दोनों आर्यों से भिन्न थी। पालि, प्राकृत और अपभ्रंश आदि इन क्षेत्रों की भाषाएं संस्कृत से बिल्कुल भिन्न थीं। उसी प्रकार यहां मंदिरों के बदले चैत्य, बिहार और शक्ति-पूजा के स्थलों की भी भरमार थी; जो इसे आर्य परम्परा से अलग करते हैं।

वृज्जि संघ/लिच्छवि गणतंत्र : बौद्ध और जैन साहित्य से संकेत मिलता है कि वृज्जि संघ या लिच्छवि संघ, जिसे वैशाली का गणतंत्र कहा जाता है, का अस्तित्त्व काल 725 ई० पू० से 481 ई० तक रहा। वैशाली के संघात्मक गणतंत्र की स्थापना कैसे हुई, यह ज्ञात नहीं है। कुछ विद्वानों के अनुसार पड़ोसी राज्य विदेह के जनक-राजवंश के नाश के पश्चात् 'वृज्जि संघ' की स्थापना हुई। कुछ भी हो एक सुखी सम्पन्न गणतंत्र के रूप में इसकी चर्चा प्राचीन साहित्य में मिलती है। अत: इसका निर्माण जैसे भी हुआ हो, इसकी प्राचीनता असंदिग्ध है। ऐसा लगता है कि वैशाली गणतंत्र की स्थापना उसके राजतंत्र के ध्वंसावशेष पर ही हुआ होगा। वैशाली की अनेक स्तरीय सुरक्षा दीवारें तथा सैन्य-व्यवस्था इस बात के प्रमाण हैं कि इसे बराबर अपने शत्रुओं का भय सताता रहता था। अत: इसने जनता के सभी वर्गों के सहयोग और प्रतिनिधित्व द्वारा एक मजबूत गणतंत्र की स्थापना की थी, जिनका उद्देश्य व्यापक जन-कल्याण और अपने राजनैतिक-सांस्कृतिक संप्रभुता की रक्षा था।

विद्वानों ने वैशाली के गणतंत्र को दो भागों में बांट कर इसका अध्ययन किया है। पहला भाग इसका उत्थान काल है, जिसकी समय-सीमा ई०पू० 725 से 575 ई० पू० तक है। ई० पू० 575 से 481 ई० पू० तक का दूसरा काल इसका 'पतन-काल' है। अपने उत्थान-काल में लिच्छवियों ने उजड़ी और अव्यवस्थित वैशाली को फिर से बसाया। वैशाली नगर का पुनर्निर्माण किया गया। नगर निर्माण और सुरक्षा कार्यों के लिए उत्तर बिहार के लगभग सम्पूर्ण प्रमुख जाति और वर्गों के प्रतिनिधियों को मिलाकर एक 'वृज्जि संघ' की स्थापना की गयी। वैशाली उसकी राजधानी थी। वृज्जियों ने वैशाली नगर को सात मजबूत दीवारों (प्राचीरों और प्रकारों) से सुरक्षित कर रखा था। वैशाली की मजबूत सुरक्षा-व्यवस्था पड़ोसी राज्य मगध और कोशल के आक्रमणों से सुरक्षा के लिए थी। आचार्य चतुर सेन शास्त्री के अनुसार "विदेह राज्य टूटकर यह वज्जी संघ बना था। इस संघ में विदेह, लिच्छवि, क्षात्रिक, वज्जी, उग्र, भोज, इक्ष्वाकू और कौरव ये आठ कुल सम्मिलित थे, जो अष्टकुल कहलाते थे। 'अष्टकुल' से संयुक्त लिच्छवियों का यह संघ व्रात्य संस्कारों का संघ था; और इनका यह गणतंत्र पूर्वी भारत में तब एकमात्र आदर्श और सामर्थ्यवान संघ था, जो प्रतापी मगध साम्राज्य की उस समय की सबसे बड़ी राजनीतिक और सामरिक बाधा थी।" (वैशाली की नगर-वधू पृ०-5)

वैशाली का शासनतंत्र अत्यंत सुदृढ़ और व्यवस्थित था। बौद्ध साहित्य के अनुसार इसे कोई हानि न पहुँचे, इसलिए सात नियम बनाए गए थे। (सत अपरिहानिया धम्मा) वैशाली की सैन्यशक्ति और शासन व्यवस्था इतनी सुदृढ़ थी कि जब अजातशत्रु ने उस पर आक्रमण करना चाहा, तो तीन वर्षों तक अपने मंत्री और गुप्तचरों को वैशाली में रखकर उसका भेद जाना, फूट डाली; फिर भी वैशाली को जीतने के लिए उसे 16 वर्षों तक लगातार युद्ध करना पड़ा था। जैन साहित्य के अनुसार इस प्रमुख गणतंत्र-व्यवस्था में राष्ट्रीय एकता और जनतांत्रिक प्रतिनिधित्व के लिए जिन प्रमुख जातियों को शामिल किया गया, वे थीं—उग्र, भोज, ऐक्ष्वाक ज्ञात, कौरव और लिच्छवि। (सूत्र कृतांग 1.1.13; जैन साहित्य) जैन-साहित्य की इस सूची में विदेह और वृज्जि (वृज्जी) नहीं है। किन्तु 'लिच्छवि' और 'ज्ञातु' को देखकर हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि लिच्छवि और वृज्जि अलग-अलग नहीं थे। असल में ज्ञात, वृज्जि और लिच्छवि आदि ही सम्मिलित रूप से 'वृज्जि-संघ' कहलाते थे। वृज्जि और लिच्छवि में कोई खास अन्तर नहीं था। दोनों एक दूसरे के पर्याप्त थे। जो भी हो प्राचीन इतिहास, संस्कृति और साहित्य में वृज्जियों (लिच्छवियों) के 'अष्टकुल' प्रसिद्ध है। किन्तु वैशाली मामले के विशेष इतिहासकार डॉ० योगेन्द्र मिश्र 'वृज्जि संघ' में आठ कुल या जातियों की बात का खंडन करते हैं। "वस्तुत: 'अष्ट-कुलक' एक न्याय-समिति थी, जिसका काम अंतिम अपील सुनना था और जिसके आठ सदस्य हुआ करते थे।" (वैशाली-दिग्दर्शन, पृ०-7)

महावीर और बुद्ध : वैशाली (लिच्छवि) गणतंत्र का उत्तरार्द्ध धार्मिक क्रांति से शुरू होता है, जिसमें वैशाली के पास के गांव 'गसाढ' या 'वसु-कुण्ड' के जैन तीर्थंकर भगवान महावीर और 'बौद्ध-धर्म' के प्रवर्त्तक गौतम बुद्ध के मतों का प्रचार-प्रसार होता है। ई० पू० छठी शताब्दी के भारत में जैन और बौद्ध धर्मों का प्रवर्त्तन और उदय एक महत्वपूर्ण घटना है, जिसने अतिशय विलासिता, भोग हिंसा के विरुद्ध अपने प्रेम, करुण और अहिंसा के समतावादी दर्शन से न केवल वैशाली बल्कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में एक नई क्रांति चेतना पैदा

3841 HA/02—8

की। उत्तर-पूर्व के प्रायः सभी राजा बुद्ध, बौद्ध या जैन धर्म के प्रभाव में आ गये थे। इसका प्रभाव वैशाली पर भी पड़ा। कोशल, मगध और श्रावस्ती के सम्राट बुद्ध के शिष्य बन गए। बुद्ध ने वैशाली के शांत वातावरण को अपने लिए सबसे उपयुक्त समझा । इसलिए उन्होंने यहां अपना एक स्थायी बिहार बनाया। प्रसिद्ध है कि वैशाली की राजनर्तकी परम सुंदरी अम्बपाली ने अपनी आम्रवाटिका बुद्ध को दान में दे दी और खुद बौद्ध-भिक्षुणी बन गई।

गौतम बुद्ध ने वैशाली के शांत और समृद्ध गणतंत्र को बचाने की बहुत कोशिश की। अपने शिष्य बिम्बिसार और अजातशत्रु को बराबर समझाते रहे। किन्तु उनके मना करने पर भी अजातशत्रु ने वैशाली पर आक्रमण कर दिया और इस गणतंत्र की स्वतंत्रता जाती रही। वैशाली का सारा वैभव छिन्न-भिन्न हो गया और इसी के साथ उसके गौरव पूर्ण इतिहास का अंत हो गया। इस काल की प्रमुख घटनाओं में काशी पर कोशल की और वैशाली पर मगध की विजय महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएं हैं। इसके बाद वैशाली (लिच्छवि गणतंत्र) का विलय मगध-सम्राज्य में हो जाता है।

गणिका परम्परा और अम्बपाली : 'गणिका परंपरा' और 'अम्बपाली' वैशाली का सर्वाधिक विवादास्पद अध्याय है। अम्बपाली बौद्ध कालीन भारत की सर्वांग सुंदरी गणिका और वैशाली की राजनर्तकी थी। इतिहास और साहित्य में उसे 'जनपद कल्याणी', 'नगर-वधू', 'वेश्या', 'देवी' आदि कई नामों से पुकारा गया है। 'बौद्ध साहित्य' की 'थेरीगाथा' उसी के इर्द-गिर्द रची गई है। रूप, यौवन, तेज और दर्प से दीप्त वैशाली की यह राजनर्तकी अकूत वैभव-विलास, धर्म और यश प्राप्त करती है। अम्बपाली भारतीय इतिहास, संस्कृति और साहित्य की एक गौरवपूर्ण अध्याय है। किन्तु "अम्बपाली" से पहले वैशाली में राजनर्तकी या गणिका की कोई परम्परा थी या नहीं। इस पर इतिहास मौन है।

ऐतिहासिक तथ्यों और पुरातात्विक अनुसंधानों से अम्बपाली से पहले वैशाली में राजनर्तकी की परम्परा का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु अम्बपाली के कला-वैभव, सौंदर्य और समृद्धि ने इतिहासकारों और कला-मर्मज्ञों को सोचने पर विवश कर दिया कि वैशाली की जिस विरासत ने अम्बपाली जैसी स्वप्न-सुन्दरी को महिमामंडित किया, उसे इतनी ख्याति दी, उसकी कोई-न-कोई पूर्व परम्परा रही होगी। अचानक कोई गणिका इतनी ख्यात नहीं हो सकती और न कोई लोक-मानस ही उसे सार्वजनिक सम्मान एवं स्वीकृति ही दे सकता है। अतः अनुमान है कि इसके पीछे अवश्य ही कोई समृद्ध परम्परा रही होगी।

इतिहास बताता है कि अम्बपाली की लोकप्रियता से प्रभावित होकर मगध सम्राट बिम्बिसार ने भी अपने यहां राजनर्तकी की परम्परा शुरू की थी। फिर तो प्रायः प्रत्येक जनपद में राजनर्तकी की परम्परा शुरू हो गयी। इससे ज्ञात होता है कि आस-पास के जनपदों में पहले से ऐसी कोई परम्परा नहीं थी। यद्यपि गणिका परम्परा एक आदिम-परम्परा है और आर्यों का प्राचीन साहित्य इसकी कथाओं से भरा पड़ा है। इन्द्र-सभा की अप्सराएं प्रसिद्ध हैं। किन्तु लोक जीवन में इस परम्परा को कभी स्वीकृति नहीं मिली। गणिका परम्परा अनार्यों के यहां नहीं थी। इसका सामाजिक जीवन अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छंद और उद्दाम था। यह आश्चर्य की बात है कि प्राचीन भारत में आर्य राजाओं ने तो गणिकाओं को अधिक प्रश्रय नहीं दिया; किन्तु अनार्य प्रभाव वाले वैशाली में गणिका और राजनर्तकी परम्परा थी, जिसे सामाजिक मान्यता और गौरव प्राप्त था। कहा जाता है कि अम्बपाली मगध सम्राट बिम्बिसार की समकालीन थी और सम्राट उस पर मोहित थे। बिम्बिसार के सम्पर्क से उसे एक पुत्र रत्न भी प्राप्त हुआ, जो मगध सम्राट के उत्तराधिकारी के रूप में वहां पला-पुषा। किन्तु बाद में अम्बपाली के इस पुत्र का क्या हुआ, इसकी कोई चर्चा कही नहीं मिलती।

जैन साहित्य, थेरी गाथा, जीवक की आत्मकथा आदि बौद्ध-ग्रंथ एवं रामायण, महाभारत और पुराणों की कथा से सूत्र लेकर आधुनिक भारतीय साहित्य में वैशाली और अम्बपाली पर अनेक रचनाएँ लिखी गईं। कई फिल्में बनीं। किन्तु हिंदी में दो रचनाएँ सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं—एक रामवृक्ष बेनीपुरी कृत 'अम्बपाली' नाटक और दूसरी आचार्य चतुर सेन शास्त्री का उपन्यास 'वैशाली की नगर-वधू'। 'अम्बपाली' की कथा जहां कल्पना के सहारे मानवीय राग-विराग और मूल्यों को सामयिक चिंता से जोड़ती है, वहीं 'वैशाली की नगर-वधू' की कथा अपेक्षाकृत अधिक ऐतिहासिक है। बेनीपुरी ने अम्बपाली के चरित्र को भारतीय नारी के आदर्श से जोड़ते हुए उसमें राष्ट्रीयता, देश प्रेम और लोक-कल्याण की भावनाओं का विकास दिखाया है। यहां अम्बपाली वैशाली के राष्ट्रीय और सांस्कृतिक सम्मान की रक्षा के लिए मगध-साम्राज्य के षड्यंत्र और साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध तन-मन से तत्पर दिखायी देती है। उसका त्याग-बलिदान राष्ट्रहित को समर्पित है। इसके विपरीत आचार्य चतुर सेन की अम्बपाली एक

विश्वजनीन नारी है, जिसकी चिंता के केंद्र में कोई राष्ट्र या राष्ट्रीयता नहीं है। वह सम्पूर्ण मानव समाज और अखिल मानवता के मूल्यों से चालित है। उसकी चिंता में स्त्री-बोध की सम्पूर्ण अस्मिता और गरिमा तथा पुरुषवादी समाज के प्रति प्रतिकारभाव है। वह तो उस राष्ट्र और राष्ट्रीय व्यवस्था को ही ध्वस्त कर देना चाहती है, जिसमें समाज की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी को सार्वजनिक स्त्री बनाकर राजपुरुषों की सेवा और मनोरंजन के लिए विवश किया जाता है। इसलिए अम्बपाली मगध सम्राट बिम्बिसार से सम्बन्ध बनाती है और लिच्छवी गणतंत्र के विनाश का कारण बनती है। राष्ट्र के नाम पर एक स्त्री की मान-मर्यादा और सतीत्व के हनन का वह प्रतिशोध लेती है। वह बिम्बिसार से कहती है—"लिच्छवी गणतंत्र ने मुझे बलपूर्वक अपने धिक्कृत कानून के अनुसार वेश्या बनाया है। वैशाली गण को इसका दण्ड मिलना चाहिए।" (वैशाली की नगर-वधू पृ०—98)। बेनीपुरी की अम्बपाली वीरांगना है और चतुर सेन की वारांगणा।

इस प्रकार स्त्रियों की मनो-सामाजिक मर्यादा और भारतीय जीवन मूल्यों को देखते हुए वैशाली की गणिका परम्परा और अम्बपाली पर विचार किया गया है। साहित्य और संस्कृति में वैशाली की गणिका परम्परा पर बार-बार सवाल उठाये गये हैं। किन्तु हर बार अम्बपाली की परम्परा और विरासत को गौण कर भारतीय नारी की कुल-वधू परम्परा और तथाकथित सामाजिक मर्यादा की सीमारेखा में अम्बपाली को कैद कर दिया गया है। इसके गणिका रूप को परम्परा-दोष और नारी की विवशता के रूप में चित्रित किया गया है। गणिका और राजनर्तकी के रूप में उसे महिमा-मंडित करने से भारतीय कलम कतराती रही है। बेनीपुरी और आचार्य चतुर सेन के परस्पर विरोधी मतों में भी दोनों ही दृष्टियाँ अम्बपाली को एक 'कुल-वधू' के रूप में ही देखना चाहती है। अन्तर केवल इतना है कि एक (बेनीपुरी) ने इस परम्परा का उदात्तीकरण कर उसे राष्ट्रधर्म और सार्वजनिक सेवा का पर्याय बना दिया है, तो दूसरे ने इस व्यवस्था को खारिज करते हुए व्यक्ति और वर्गहित की रक्षा के लिए व्यवस्था परिवर्तन को ही जरूरी समझा है। बेनीपुरी की 'अम्बपाली' न वेश्या है, न कुल-वधू। किन्तु उस स्थिति के प्रति विद्रोह भाव उसमें भी है। वह काम से अधिक 'कला-भाव' को समर्पित है। उसका क्षोभ देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की समझौतावादी चेतना में शामिल होकर शत्रुदेश के विरुद्ध फुट पड़ता है। वह जी-जान से मगध-आक्रमण से वैशाली की रक्षा करती है, उसका प्रेमी (अरुणध्वज) देश की बलि बेदि पर कुर्बान हो जाता है और वह खुद विरक्त होकर बौद्ध धर्म को समर्पित हो जाती है। बेनीपुरी की अम्बपाली भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम की प्रतीक वीरांगना है।

यहां बिम्बिसार के बदले अजातशत्रु को अम्बपाली पर आशक्त दिखाया गया है। वैशाली पर आक्रमण का कारण भी यही है। अम्बपाली द्वारा अजातशत्रु को उसके पिता बिम्बिसार का चित्र दिखाकर उसे अम्बपाली और वैशाली से विमुख करने का ही प्रयास है। यहां बेनीपुरी अम्बपाली को वैशाली के प्रति वफादार देखना चाहते हैं। अन्यथा बौद्ध साहित्य का 'महा परिनिब्वाण सुत्त' बताता है कि गौतम बुद्ध के पार्थिव जीवन के अंतिम दिन (488-487 ई०पू०) में अम्बपाली जीवित थी। वह थेरी (बौद्ध विक्षुणी) बन गई थी। थेरी गाथा उसकी वृद्धावस्था का चित्रण करती है। अजातशत्रु की वैशाली विजय (484 ई० पू०) तक यदि वह जीवित थी, तो भी अत्यन्त वृद्धा रही होगी। इसलिए उसकी संगति बिम्बिसार से ही बैठती है, अजातशत्रु से नहीं। इस ऐतिहासिक सत्य के बावजूद बेनीपुरी जी ने देश की सांस्कृतिक मर्यादा और राजनीतिक अस्मिता की रक्षा के लिए अजातशत्रु-अम्बपाली प्रकरण की कल्पना की है।

चतुरसेन की अम्बपाली आद्यंत ऐतिहासिक बनी हुई है। वह केवल वारांगणा है। कुल-वधू के सपने उसके मन में भी हैं। वह मन ही मन हर्षदेव को वरण कर चुकी है। जब जन-पद कल्याणी, और नगर-वधू बनने के लिए उसे विवश किया जाता है तो अपने इसी स्वप्न की रक्षा के लिए वह वैशाली की नगर-परिषद् के सामंने तीन कठिन शर्तें रखती हैं। जिन्हें पूरा करना किसी भी शासन-व्यवस्था के लिए असंभव सा है। किन्तु वैशाली की राज-व्यवस्था उसकी तीनों शर्तें मानकर उसे सर्वश्रेष्ठ राज-प्रासाद सप्तभूमि प्रासाद, नौ कोटि स्वर्णभार और दुर्ग-सुरक्षा प्रदान करती है। उसके सपने टूट जाते हैं और वह नगर-वधू बनकर उस व्यवस्था से प्रतिशोध लेती है।

किन्तु गौर से विचार करें तो वैशाली की गणिका-परम्परा उतनी बुरी नजर नहीं आती। जिस परम्परा की रक्षा में कोई राजसत्ता लगभग अपना सम्पूर्ण वैभव लूटा दे, वह परम्परा केवल भोग-ऐश्वर्य और मनोरंजन की परम्परा नहीं हो सकती। अम्बपाली की परम्परा नारी-सम्मान और प्रतिभा चयन की भी परम्परा है। वैशाली में एक निश्चित अवधि के अन्तराल पर जनपद की सर्वांग सुंदरी को जनपद कल्याणी या नगर-वधू के रूप में चुने जाने की परम्परा थी।

अम्बपाली के चयन पर उसे ताज पहनाती हुई पूर्व नगर-वधू पुष्प गंधा उसके सौभाग्य को सराहती है। आम जनता पुष्पवर्षा करती है। क्या राजा, क्या प्रजा सबके सिर श्रद्धा से झुक जाते हैं। उसे अपार वैभव, सम्मान और स्नेह मिलता है। आज के 'ब्यूटी कन्टेस्ट' और सौंदर्य प्रतियोगिता को याद कीजिए। ऐसी प्रतिभा सम्पन्न नारी कोई साधारण नारी नहीं हो सकती। वह कुलीन घराने की कोई तेजस्विनी ही होती होगी। अम्बपाली का भी सम्बन्ध राज घराने से ही था। फिर केवल कुलवधू बनकर किसी नारी की सम्पूर्ण प्रतिभा का विकास नहीं हो सकता। इसके लिए उसे सार्वजनिक जीवन में आना ही होगा। अपने समय की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी होने पर भी अम्बपाली को एक कुलवधू के रूप में कदाचित वह ख्याति नहीं मिल पाती, जो उसे नगर-वधू के रूप में मिली। जीवन के अनेक श्रेष्ठ और सम्मानजनक पदों की तरह 'नगर-वधू' का पद भी एक सम्मानजनक और श्रेष्ठ पद था, जिस पर पहुँचना किसी भी नारी के लिए सौभाग्य और सम्मान का विषय हो सकता है, उसी तरह जिस तरह आज सौंदर्य प्रतियोगिताओं में चयनित किसी भारत-सुंदरी या 'विश्वसुंदरी' के लिए होता है। आज की नारी-मुक्ति भी अपने सम्पूर्ण गुणों का विकास ही चाहती है और इस विकास की परिणति किसी बड़े पद और सम्मान के रूप में ही होती है। वैशाली की राजनर्तकी नगर-वधू या गणका परम्परा भी एक स्वस्थ परम्परा रही होगी, जिसमें एक सुंदर नारी स्वतंत्र और सार्वजनिक जीवन जीकर अपनी योग्यता और कला-कौशल का परिचय देती है। अम्बपाली के कला-कौशल, आंतरिक गुण और प्रतिभाओं का पूर्ण विकास सार्वजनिक जीवन में ही संभव था, जो हुआ।

अम्बपाली का जीवन आज की कला, संस्कृति, धर्म और राजनीति में विराजमान किसी भी स्त्री प्रतिनिधि से कहीं कमजोर सिद्ध नहीं होता। चाहे वह फिल्मों की दुनिया का चोटी की नायिकाएं हों, चाहे सर्वोच्च आसन पर विराजमान राजनेत्रियां, चाहे मॉडल नायिकाएं हों, चाहे विज्ञापन-बाजार की स्वप्न सुंदरियां अम्बपाली के कला-वैभव, यश और ख्याति सबके ऊपर दिखाई पड़ती है। अम्बपाली का वह गुण जिसके सामने बुद्ध जैसे सिद्ध पुरुष भी घुटने टेक देते हैं, कितनी कुलवधुओं के पास होता है। अम्बपाली ने अपने रूप, गुण और प्रतिभा की बदौलत वह सब प्राप्त किया, जो एक सफल मानव जीवन का लक्ष्य हो सकता है। अपने गणिका और राजसी ज़ीवन से उसने अर्थ और काम (पुत्ररत्न) की प्राप्ति की, तो बौद्ध भिक्षुणी बनकर धर्म और मोक्ष की सिद्धि भी। जीवन का यह गतिशील यथार्थ अनुकरणीय है।

इस प्रकार जीवन के चारों पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की साधिका बनी अम्बपाली का जीवन भारतीय नारी का आदर्श न भी हो, तो आज के समय और समाज का यथार्थ जरूर है। आज की सौंदर्य प्रतियोगिताओं, मॉडलिंग, नृत्य-संगीत, सिनमा और विज्ञापन की दुनिया के ग्लैमरस जीवन से 'अम्बपाली' की परम्परा को सहज ही जोड़ा जा सकता है। प्राचीन भारत की यह परमपरा निश्चय ही नारी के सकारात्मक रूप को प्रस्तुत करती है। इससे नारी शोषण और अपमान कहीं द्योतित नहीं होते। इससे तत्कालीन समाज की जीवंतता, रागात्मकता, गतिशीलता और सांस्कृतिक गरिमा ही सूचित होती है। अंतः गणिका परम्परा और अम्बपाली वैशाली के प्राचीन समाज और संस्कृति का एक सकारात्मक पक्ष ही है। इस पर शोध करने की आवश्यकता है।

वैशाली की परम्परा और समकालीन परिदृश्य : किन्तु मगध साम्राज्य का अंग होने पर ही वैशाली की समृद्ध सामाजिक और सांस्कृतिक परंपरा अपने बनते-बिगड़ते रूपों में लागतार जीवित रहती है। प्राचीन भारत के सौलह महाजनपदों में सर्वाधिक चर्चित लिच्छवी गणतंत्र की पहचान मगध-साम्राजय के पतन के बाद भी गुप्त काल और परवर्ती तुर्क-अफगान काल तक एक आर्थिक-सांस्कृतिक केंद्र के रूप में चर्चित रहती है।

अनुमान है कि तुर्क-अफगान काल में इसकी आर्थिक-सांस्कृतिक समृद्धि की पहचान वैशाली के पास ही प्रसिद्ध सूफी संत मुजफ्फरशाह के नाम पर बसाये गये नगर मुजफ्फरपुर के रूप में बदल गई हो। वैशाली के खण्डहर और भग्नावशेषों से कुछ ही किलोमीटर दूर अवस्थित बिहार का यह प्राचीन नगर आज भी कृषि, व्यापार और संस्कृति का एक बहुत बड़ा केन्द्र है। यहां के सोने-चांदी के गहनों का बाजार, वस्त्र व्यापार और गीत-संगीत एवं नृत्य परम्परा देश भर में प्रसिद्ध है। यहां के वस्त्र-व्यापार केन्द्र 'सूत्ता-पट्टी' को बिहार का 'मैनचेस्टर' कहा जाता है। आज भी यह बिहार का थोक-वस्त्र-विक्रय का सबसे बड़ा बाजार है, जहां से देश के दूसरे भागों में भी दूर-दराज तक कपड़े भेजे जाते हैं। प्राचीन वैशाली भी रेशमी वस्त्र, स्वर्णाभूषण और कला-संस्कृति के लिए देश भर में प्रसिद्ध थी। यहां के आम-लीची के बगान फल-सब्जी और खाद्यान्नों की कृषि-संस्कृति भी प्राचीन वैशाली की तरह प्रसिद्ध है। 'अम्बपाली' वैशाली की कला-संस्कृति की जीवंत

उदाहरण है। फाल्गुनी-मेले एवं विभिन्न सार्वजनिक उत्सवों में सामूहिक नृत्य-संगीत राज-नर्तकी एवं जन-पंद कल्याणी की मर्यादित परम्परा वैशाली की सांस्कृतिक विशेषता थी। वर्तमान मुजफ्फरपुर में भी 'चतुर्भुज स्थान' के रूप में चर्चित नृत्य-संगीत और कला-साधना का एक बड़ा मुहल्ला है, जो इन दिनों 'वेश्या-मंडी' के रूप में जाना जाता है। इस रूप में 'सोनागाछी' (कोलकाता) के बाद यह देश में सर्वाधिक चर्चित स्थान है। आज इसका रूप चाहे जैसा हो, किन्तु परम्परा नृत्य-संगीत के प्रशिक्षण और साधना से ही जुड़ी है। आज भी यहाँ नृत्य-संगीत का विधिवत प्रशिक्षण होता है। यहां की नृत्यांगनाएं राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हैं। राष्ट्रीय कला महोत्सवों, थियेटर-नाटक से लेकर फिल्मों तक में यहां की नृत्यांगनाओं ने नाम कमाया है। शरतचन्द ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'देवदास' की रचना यहीं की थी। तब यह मुहल्ला शहर के बीचों-बीच कल्याणी-बाजार के पास था। यहीं उपन्यास में चर्चित नर्तकी चन्द्रमुखी भी रहती थी। विष्णु प्रभाकर के 'आवारा-मसीहा' में आये महादेव साहू का परिवार अब भी यहां है। यहीं पर वह 'साहू पोखर' भी है, जहां से 'देवदास' और पारो स्नेह-सूत्र में बंधे थे और जो उनका क्रीड़ा स्थल था। यहीं पर रूक्मिणी-बाग भी है। अत: आज के मुजफ्फरपुर की परम्परा भी कहीं-न-कहीं वैशाली की प्राचीन परम्परा से जुड़ती नजर आती है। ❑❑

—व्याख्याता, हिंदी विभाग रामदयालु सिंह महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर, 01, टीचर्स फ्लैट, आर.डी. एस. कॉलेज कैम्पस, मुज० (बिहार) 842 002

3841 IIA/02—9

'सुमन' की सुगंध से महकता रहेगा साहित्य संसार

—कुलदीप कुमार

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी व छायावादोत्तर प्रगतिशील काव्यधारा के सर्वमान्य प्रतिनिधि डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' का जन्म 5 अगस्त 1915 को उ०प्र० में उन्नाव जिले के झगरपुर में हुआ था।

डा० सुमन क्या नहीं थे—कवि, शिक्षक, प्रशासक, शिक्षाविद, मंचजयी, वाक्कला में निपुण, दीवानगी की हद तक मस्त और रंक से राजा तक के परिचित और अपने। यदि सिर्फ उनके साहित्यिक योगदान की बात की जाए तो उनके खाते में मात्र दस किताबें दर्ज होंगी। कविताएं कई रंग लिए हुए हैं। प्रेम भी है, मस्ती भी, फकीराना अंदाज भी और जीवन की क्षण भंगुरता के अहसास के साथ मनुष्य की अदम्य जिजीविषा की वंदना भी। यह कविताएं जिन लोगों ने डा० सुमन के मुख से सुनी हैं उन्हें इनके मायने पता है। लेकिन डा० सुमन सिर्फ कवि भर होते तो बात और थी। वह कवि से ज्यादा बहुत कुछ थे। उनके व्यक्तित्व के इतने आयाम थे कि एक आयाम को पकड़कर पूरे व्यक्तित्व का आंकलन करना मुश्किल ही नहीं, लगभग असंभव सा है।

पदम्भूषण डा० 'सुमन' का सहित्य-जगत की ओर रुझान बनारस की समृद्ध साहित्यिक-विरासत के संपर्क में आने के बाद शुरू होता है जहां काशी हिंदू विश्वविद्यालय से उन्होंने न केवल एम.ए.पी.एच.डी. की वरन् जय शंकर प्रसाद, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, सूर्यकांत 'निराला' जैसे साहित्य-मनीषियों के संस्कार भी अर्जित किए। यहीं उनका मार्क्सवादी विचारधारा से भी सामना हुआ तो कालांतर एक प्रगतिशील विचारधारा के रूप में उनके रचना संसार को प्रभावित करता रहा।

यदि राजनेताओं की ही बात करें तो पंडित जवाहर लाल नेहरू से लेकर राजीव गांधी और अटल बिहारी वाजपेयी तक से डा० सुमन के सीधे संबंध रहें हैं। प्रधान मंत्री बनने के बाद अटल जी ने लाल किले से अपने पहले संबोधन में सुमन जी की कविताएं पढ़ी थीं। अटल जी को तो उन्होंने पढ़ाया था। उनके पढ़ाए, न जाने कितने विद्यार्थी बाद के वर्षों में विभिन्न विद्याओं में शीर्ष पदों पर पहुंचे। उनकी शिष्य परंपरा इतनी लंबी हो गयी थी कि उज्जैन आने वाला हर बड़ा आदमी सुमन जी के घर जाता था। सुमन जी की लाजवाब मस्ती और लुट जाने की अदा ने उन्हें अजातशत्रु बना दिया था।

वे एक सफल मंचीय कवि भी थे। उनकी ओजपूर्ण वाणी श्रोताओं को बांधे रखती थी। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान उनकी कविताएं धूम मचाती थीं। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान उनकी राष्ट्र प्रेम से ओतप्रोत कविताएं सुप्त भारतीयों में ओज व उत्साह का संचार कर जाती थीं।

प्रगतिशील काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि डा० सुमन का संपूर्ण कृतित्व दस काव्य संग्रहों व अन्य रचनाओं से नहीं आंका जा सकता। 1939 मे 'हिल्लोल' काव्य संग्रह से अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरूआत करने वाले सुमन ने 'मिट्टी की बारात,' 'कटे अंगूठों की बंदनवारें,' 'वाणी की व्यथा,' 'प्रलय सृजन,' 'जीवन का गान,' 'युग का मोल' जैसी चर्चित रचनाएं हिंदी साहित्य जगत को दीं जिसके लिए उन्हें तमाम पुरस्कार भी मिले। पद्म भूषण के अलावा उनके खाते में पद्मश्री, साहित्य अकादमी पुरस्कार, भारत-भारती पुरस्कार, शिखर सम्मान, दयावती मोदी पुरस्कार, तथा 'मिट्टी की बारात' के लिए सोवियत लैंड जैसा प्रतिष्ठित सम्मान भी मिला। लेकिन उनके जीवन की सहजता सादगी व फक्कड़पन जैसे गुणों के चलते उन्हें आम जनमानस का अपार सम्मान मिला, जो कि किसी भी रचनाकार के लिए सबसे बड़ा सम्मान होता है।

सुमन जी उस पीढ़ी के साहित्य साधक थे जो पीढ़ी अपनी सादगी और फक्कड़पन को साहित्यकार का आभूषण मानती थी। रामचंद्र शुक्ल, प्रसाद, निराला से उन्होंने साहित्य के संस्कार लिए, तो बच्चन जैसे लोगों के मित्र और सहपाठी रहकर उन्होंने साहित्य विमर्श किया। रूस्तम सैटिन जैसे सुप्रसिद्ध कम्युनिस्ट नेता उनके वरिष्ठ छात्र सहपाठी रहे, जिनसे उन्होंने मार्क्सवाद से प्राथमिक पाठ सीखे थे तथा उन्हीं के आकर्षण में अपने पिता को बहलाकर बनारस पढ़ने गए जहां रूस्तम सैटिन बनारस विश्वविद्यालय छात्र संघ के अध्यक्ष थे। कवि मंच पर सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौर में उन्होंने जाना शुरू किया था। उन दिनों उनकी कविता 'मास्को अब भी दूर है' बहुत लोकप्रिय हुई थी। मुम्बई के एक कवि सम्मेलन के दौरान उनकी मुलाकात प्रसिद्ध जनकवि शील से हुई और वे उनके अभिन्न मित्र बन गए थे। उन दिनों मंच पर जिन चार लोगों को सर्वाधिक सुना जाता था उन में शील, कवि प्रदीप, गोपाल सिंह नेपाली के साथ सुमन जी का

नाम प्रमुख था। बाद में इस प्रगतिशील चौकड़ी में शैलेन्द्र भी शामिल हो गए थे। सुमन जी नाम से ही नहीं, अपितु भावों से भी सुमन जैसे कोमल थे। वे नहीं चाहते थे कि किसी को भी उनके शब्दों से आघात पहुंचे इसलिए मंच मर जब भी किसी के बारे में बोलते, तब उनके मुंह से फूल ही झड़ते थे चाहे वह व्यक्ति उस प्रशंसा की क्षमता नहीं भी रखता हो। अपनी प्रगतिशील सोच के बाद भी उनमें जैसी व्यावहारिक उदारता थी वह बहुत कम लोगों में देखने को मिलती है! किसी भी कार्य से उनके पास पहुंचे अनजान व्यक्ति को भी अपनी क्षमता भर सहयोग करने में उन्हें कभी संकोच नहीं होता था। सुमन जी अपने साहित्य के लिए तो लंबे समय तक याद किए जाते रहेंगे पर अपनी मस्ती और मानवीय व्यवहार के लिए भी एक आदर्श के रूप में लोग उन्हें याद रखेंगे।

वे अपने को आगे बढ़ाने की बजाय अपने आस-पास के हर व्यक्ति को थोड़ा ऊपर उठाने में यकीन करते थे। इसीलिए जो भी उनके पास जाता था वह थोड़ा बहुत बड़ा होकर लौटता था। उनके व्यक्तित्व में असंख्य लोगों को प्रभावित करने वाली एक अध्यापक की ईमानदारी, एक कवि का बड़ा मन और एक मनुष्य की संवेदना का सक्रिय रूप देखने को मिलता था। उन्होंने 87 वर्षों का सक्रिय जीवन जिया।

कवि शिवमंगल सिंह सुमन के व्यक्तित्व का एक पहलू यह है कि वे एक सफल कवि के साथ-साथ एक प्रखर आलोचक भी रहे हैं। भावों में वे जहां 'सुमन' जैसे कोमल थे, वहीं आलोचना में कठोर भी थे। 'गीत-काव्य', 'उद्यम और विकास' व 'महादेवी की काव्य साधना' जैसी आलोचनात्मक रचनाएं भी उन्होंने हिंदी साहित्य जगत को सौंपी हैं। इसके साथ ही 'प्रकृति पुरुष कालिदास' नामक सुमन जी का नाटक भी खासा चर्चित हुआ। सुमन जी नाम से ही नहीं वरन् भावों की दृष्टि से भी 'सुमन' जैसे कोमल थे। उनकी रचनाओं में मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पण स्पष्ट परिलक्षित होता है। वर्ष 1961 में लिखी गई एक लंबी कविता 'मां गई' की कुछ पंक्तियों में शब्दों की संवेदन शीलता की बानगी देखिये :—

मुझे याद आता नहीं
कभी कोई सेवा बन पड़ी हो
जन्मदात्री की,
व्यथा ही बढ़ाता रहा
अपनी सुविधा के लिए।
अस्तु मैं अपनी मां का भी सगा नहीं
कभी कोई मुझसे करे
आशा नहीं प्यार की।
आज होश आया है
जब सब बेकार है
पत्र मिला
मां गई
कैसी थी? कैसे बताऊं आज?
आशीषों, आशीषों, आशीषों मयी।

सच्चे अर्थों में सुमन ने अपने जीवन को कविता ब[illegible] लिया था। पुष्प जैसी कोमलता उनके जीवन का यथार्थ थ[illegible] उनकी कोशिश होती थी कि उनके जीवनचर्या में मुंह [illegible] निकले शब्दों से किसी को आहत नहीं किया जाए। उन[illegible] व्यावहारिक जीवन में जो सादगी व उदारता नजर आती [illegible] उसके उदाहरण कम ही मिलते हैं। वे कई उच्च पदों [illegible] आसीन रहे। नेपाल स्थित भारतीय दूतावास में संस्कृति प्रतिनि[illegible] की भूमिका हो या दो बार विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के कुलप[illegible] का दायित्व हो, उनके सहकर्मियों व आम जनमानस को उन[illegible] सहज स्वभाव के चलते कभी कोई शिकायत नहीं रही। वे शब्दों [illegible] ही कवि नहीं थे, दिल व व्यवहार के भी सहज कवि थे।

'हिल्लोल' की कविताएं विरह और मिलन का आख्या[illegible] हैं। लेकिन सुमन अपनी प्रेम कविताओं के कारण नहीं उ[illegible] कविताओं के लिए इतिहास में दर्ज हैं जो उन्होंने सर्वहारा[illegible] की पक्षधरता में या क्रांति के आवाहन में लिखी थीं। इस क्र[illegible] में 'विश्वास बढ़ता ही गया' उनका प्रतिनिधि प्रगतिवादी काव[illegible] संकलन है। पच्चीस कविताओं का यह संकलन प्रगतिवा[illegible] युग की एक उपलब्धि है। इसी तरह 'विंध्य हिमालय' [illegible] अनुभूति के मुक्त क्षणों और प्रसंगों का चित्रण करता क[illegible] फिर 'मिट्टी की बारात' में प्रगतिवादी प्रतिबद्धता की घोष[illegible] करता है। लेकिन सुमन कवि के साथ बहुत कुछ थे। इसलि[illegible] उनके व्यक्तित्व को रेखाओं में बांधना बेहद उलझन भरा काम है[illegible]

इस प्रकार जीवन पर्यन्त साहित्य साधना में रत हिं[illegible] जगत का यह रश्मि पुंज 27 नवम्बर 2002 को पंचतत्व [illegible] प्राप्त हो गया।

नि:संदेह 'सुमन' जी अपने युग के सर्वश्रेष्ठ साहित्यक[illegible] के रूप में प्रतिष्ठित हैं। एक बार भारत के प्रथम प्रधानमं[illegible] पं० जवाहर लाल नेहरू ने डा० सुमन की डायरी में लिख[illegible] था कि जीवन को कविता बनाना चाहिए। सही मायने [illegible] डा० शिवमंगल सुमन ने अपने जीवन को ही कविता ब[illegible] दिया था। कविता का माधुर्य सहजता, प्रखरता, सौम्यता [illegible] ओज उनके जीवन के पर्याय थे। आज साहित्य की बगि[illegible] का यह सुमन भले ही मुरझा गया हो लेकिन उसकी रचनाशील[illegible] की महक सदियों तक कायम रहेगी। ❑❑

एम-128, प्लाट नं. 29, रामाकृष्ण विहार, पटपड़गंज, दिल्ली-110092

अगली सदी का दर्शन

—शंकर शरण

इन सबका कारण यह है कि लोग समझते हैं कि ऐसी स्थितियां हो सकती हैं जब कोई मनुष्यों के साथ बिना प्रेम के व्यवहार कर सकता है। लेकिन ऐसी कोई स्थिति नहीं होती। हम वस्तुओं के साथ बिना प्रेम के व्यवहार कर सकते हैं — हम पेड़ काटते हैं, ईंट बनाते हैं, लोहा पीटते हैं—मगर मनुष्य के साथ वैसे व्यवहार नहीं कर सकते, ठीक उसी तरह जैसे कोई मधुमक्खियों के साथ बिना सावधानी के व्यवहार नहीं कर सकता। यदि आप बिना सावधानी मधुमक्खियों के साथ व्यवहार करते हैं तो आप उन्हें घायल करते हैं और स्वयं भी घायल होते हैं। यही मनुष्य के साथ भी है। यह इससे भिन्न नहीं हो सकता, क्योंकि आपसी सौहार्द मानव जीवन का आधारभूत नियम है। यह सही है कि कोई अपने आप को किसी को प्रेम करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता, मगर इसका यह अर्थ नहीं कि आप मनुष्य के साथ बिना प्रेम के व्यवहार कर सकते हैं, विशेषकर जब आप उससे कुछ मांग करते हैं या चाहते हैं। यदि आप प्रेम नहीं महसूस करते तो कोई बात नहीं, चिंता मत कीजिए। तब सिर्फ वस्तुओं से, अपने आप से, और जिस भी किसी चीज से आपका मन चाहे संलग्न रखिए, मगर मनुष्यों से नहीं।

(लेव टॉल्सटॉय, पुनरुत्थान)

इसमें किसी को मतभेद नहीं होगा कि बीसवीं शताब्दी अभूतपर्वू हिंसा से भरी रही है। न केवल दो-दो महायुद्ध हुए, वरन् स्थानीय युद्धों, तानाशाही शासनों, आतंकवादियों, जिहादियों और भांति-भांति के क्रांतिवादियों की हिंसा आज भी अनवरत रूप से जारी है। इन कार्रवाइयों में करोड़ों बेगुनाह लोग मारे गए और हर दिन अनगिनत मारे जा रहे हैं। शताब्दी का आखिरी वर्ष भी नाटो देशों द्वारा युगोस्लाविया में हिंसा और नाहक बमबारी का प्रत्यक्षदर्शी रहा। अभी भी दुनिया में अधिक से अधिक संहारकारी अस्त्रों की खोज और निर्माण की प्रतियोगिता चल रही है।

मगर यह बिलकुल स्पष्ट है कि तमाम हिंसा के बावजूद किसी विचारधारा को, किसी देश को या किसी जाति को अपना अभीष्ट प्राप्त नहीं हुआ है। चाहे वह साम्यवाद की मृग-मरीचिका हो या फिर आयरलैंड, फिलीस्तीन या कोसोवो जैसे राष्ट्रीयताओं के पुरातन झगड़े हों। इतनी विफलताओं के बावजूद अहिंसा और सत्य पर आधारित जीवन-दर्शन लोगों को निरर्थक प्रतीत होता है और हिंसा की पद्धति सार्थक! किंतु मानवता को यदि जीवित रहना है तो अगली सदी में यह सब नहीं चलता रह सकेगा। उसे घूम-फिर, थक-हार कर उस विवेकशील दर्शन को स्वीकार करना ही पड़ेगा जो प्राचीन भारत के मनीषियों ने बताया था। और जिसे आधुनिक युग में लेव टॉल्सटॉय और महात्मा गांधी जैसी विभूतियों ने फिर से अपनाया था। सरलता, सत्य और भलाई पर आधारित उनका सहज जीवन-दर्शन कितना ही आदर्शवादी क्यों न लगे पर इसकी अंतर्निहित शक्ति से मानवता कभी इंकार नहीं कर सकी है।

टॉल्सटाय के विश्वप्रसिद्ध उपन्यासों, कहानियों और निबंधों में यह दर्शन अंत:सलिला की तरह प्रवाहित होता है। उनके निबंधों की बजाय उनकी कहानियों व उपन्यासों में यह दर्शन अधिक अजेय रूप में प्रकट होता है। यों ही नहीं वे मानव जीवन पर उसकी समग्रता में लिखने वाले महानतम लेखक माने गए हैं। सहजता, सरलता और सच्चाई ने ही उनकी रचनाओं को अजर-अमर बनाया है। उन्होंने युद्ध और शांति में लिखा था, ''जहां सरलता, अच्छाई और सत्य अनुपस्थित हों वहां कोई महानता नहीं हो सकती।'' यह दार्शनिक कथन और उनकी रचनाएं एक-दूसरे की बड़ी सुंदर पुष्टि करती हैं। वस्तुत: टॉल्सटॉय का दर्शन इतना सरल और सीधा था कि अधिकांश लोग उसे तब भी और आज भी अव्यावहारिक समझते हैं। पर यह गौर करने की बात है कि उसी जीवन-दर्शन की शक्ति से महात्मा गांधी इतनी गहराई से प्रभावित हुए कि उन्होंने टॉल्सटॉय को अपना गुरू माना। यही नहीं, गांधीजी ने अपने जीवन और कार्य से उस दर्शन की व्यवहारिकता सिद्ध कर दिखाई थी। दक्षिण अफ्रीका में अपने अखबार 'इंडियन ओपीनियन' में टॉल्सटॉय के बारे में उन्होंने यह लिखा था :

वे बहुत अनुभव प्राप्त करने और अध्ययन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि संसार में

साधारणतया जो राजनीति प्रचलित है वह दोषपूर्ण है। उसका मुख्य कारण उनके मत से यह है कि हम लोगों में बदला लेने की जो टेव है, वह अशोभनीय है; और सब धर्मों के विरुद्ध है। वे मानते हैं कि हम अपने नुकसान पहुंचाने वाले को नुकसान पहुंचाएं तो इससे दोनों की हानि होती है।... वे बुराई के बदले भलाई करने के नियम पर बहुत दृढ़ता से आरूढ़ हैं। ऐसा कहने से उनका तात्पर्य यह नहीं है कि जिस पर कोई कष्ट आए वह उसका कोई उपाय ही न करे। उनकी मान्यता यह है कि अपने दुःख के कारण स्वयं हम ही हैं। अगर हम जुल्म करने वाले के आगे न झुकें तो वह जुल्म कर ही नहीं सकता। साधारणतया कोई भी व्यक्ति मुझे अपने दिल-बहलाव की खातिर लात नहीं मारेगा। ऐसा करने का कोई-न-कोई सबब होगा। यदि मैं उसकी इच्छा के विरुद्ध चलूं तो वह उसे मनवाने के लिए मुझे लात मारेगा। यदि मैं उसकी लात खाकर भी न मानूँ तो फिर वह मुझे मारना बंद कर देगा। वह बंद करे या न करे, मुझे उसकी परवाह नहीं होगी। उसकी आज्ञा न्यायपूर्ण नहीं है, मेरे लिए तो इतना काफी है। गुलामी अन्यायपूर्ण आज्ञा मानने में है, लात खाने में नहीं। लात खाने पर भी हम बदले में लात न मारें, यही सच्ची वीरता और मनुष्यता है। टॉल्सटॉय की शिक्षा का मूल-मंत्र यही है।

यह बात 18 नवंबर 1909 को लिखी गई थी। आज लगभग एक सदी के बाद भी इसका कोई हिस्सा पुराना या बेकार साबित नहीं हुआ है। दूसरी ओर, इस दर्शन को व्यर्थ मानकर जो-जो भी अन्य रास्ते अपनाए गए उससे लगभग पूरी एक शताब्दी में तथाकथित व्यवहारिक लोगों ने किस क्षेत्र में क्या हासिल किया है? भूतपर्वू सोवियत संघ और लाल चीन की डेढ़ अरब जनता इसकी प्रमाणिक गवाही दे सकती है कि दर्शकों तक एक 'वैज्ञानिक' दर्शन का पालन करते हुए तथा वर्ग-संघर्ष, वर्ग-दमन और वर्ग-शत्रु के निर्बाध सफाए के बावजूद वे कुछ भी प्राप्त नहीं कर सके। ये देश आज भी किसी उपयुक्त सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था की तलाश में भटक रहे हैं। यूरोप, अमरीका समेत अन्य देशों की स्थिति भी कुछ ज्यादा सुखकर नहीं है।

गांधीजी को टॉल्सटॉय पर असीम श्रद्धा थी। अपने गुरू से वे समय-समय पर सलाह माँगते थे और वयोवृद्ध होने पर भी टॉल्सटॉय उन्हें अपनी राय से अवगत कराते थे। एक बार गांधी जी ने उनसे इस पर राय मांगी कि अहिंसात्मक प्रतिरोध की आचार नीति और उसकी अमोघता पर एक आम निबंध प्रतियोगिता आयोजित की जाए तो उससे आंदोलन लोकप्रिय होगा और लोग इस विषय में विचार भी करेंगे। पर गांधीजी के एक मित्र ने इस पर नैतिकता का प्रश्न उठाया। उनकी दृष्टि से ऐसी प्रतियोगिता का आमंत्रण अहिंसात्मक प्रतिरोध की भावना से मेल नहीं खाता, क्योंकि यह एक तरह से सहमति खरीदना हो जाता। प्रतियोगिता का विचार गांधीजी का ही था किंतु इसके औचित्य पर प्रश्न उठ जाने पर उन्होंने अपने गुरू से समाधान मांगा। टॉल्सटॉय ने अपने उत्तर में कहा कि किसी विचार,भावना या सत्कर्म के प्रसार के लिए आर्थिक लोभ का उपयोग उचित नहीं होगा। गांधीजी ने तुरंत प्रतियोगिता का विचार खारिज कर दिया।

इस उदाहरण में यह शिक्षा निहित है कि सेवा के बदले किसी का धार्मिक या राजनीतिक विश्वास खरीदना या बदलना उचित नहीं हो सकता। एक मतावलंबी या धर्मावलंबी को अन्य मतावलंबियों या धर्मावलंबियों के अस्तित्व के प्रति सहिष्णु भी होना चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि सभी उस धर्म या मत में अवश्य दीक्षित कर लिए जाएं, जो किसी जनसेवक का अपना धर्म या मत है। दूसरों के धार्मिक विश्वास को अपने विश्वास से हीन मानना, और उन्हें 'मुक्त' करने के उपाय करते रहना भी एक तरह की तानाशाही है जिससे सौहार्द खत्म होता है।

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में अपने सत्याग्रह के विचार और कार्यक्रमों से टॉल्सटॉय को अवगत कराते हुए उनकी प्रतिक्रिया भी चाही थी। टॉल्सटॉय ने उसे बहुत पसंद किया और गांधीजी को भेजे अपने पत्र (7 सितंबर 1910) में यह लिखा :

> **ज्यों-ज्यों आयु बढ़ रही है—विशेषकर इन दिनों जब मैं मृत्यु के निकट पहुंच रहा हूं, दूसरों के सामने अपनी वे भावनाएं व्यक्त करने की मेरी प्रवृत्ति अधिकाधिक प्रबल होती जा रही है जो मेरे अंतर को व्याकुल कर रही है और जो मेरी राय में अत्यधिक महत्व की हैं। मतलब यह कि जिसे बुराई का प्रतिकार न करने का सिद्धांत कहा जाता है वह वास्तव में प्रेम के अनुशासन का ही दूसरा नाम है जो मिथ्या व्याख्या की विकृति से अछूता है। दूसरों के साथ तादात्म्य स्थापित करके और एकात्मक होने की अभिलाषा ही प्रेम है ऐसी अभिलाषा सदैव सत्कर्मों की प्रेरणा जगाती है। प्रेम ही मानव जीवन का सर्वोपरि और**

अनुपम धर्म है और प्रत्येक व्यक्ति इसका अपनी अन्तरात्मा में अनुभव करता है। उसकी सर्वाधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति हमें शिशुओं में मिलती है। मनुष्य भी उसे महसूस करते हैं लेकिन तभी तक जबतक कि संसार के मिथ्या मतवाद उसकी आंखों पर पर्दा नहीं डाल देते।

टॉल्सटॉय इस बात से चिंतित होते थे कि समाचारपत्र और पत्रिकाओं में बड़ी-बड़ी बातों की चर्चा रहती है, वैज्ञानिक प्रगति और कूटनीतिक संबंधों की बातें उसमें भरी रहती हैं, किंतु अनवरत हिंसा के प्रयोग और इसके औचित्य पर सभी चुप्पी साध लेते हैं। आज भी स्थिति वैसी ही है। हिंसा से आज तक न कोई समस्या हल हुई, न ही उसका मूल रूप बदल सका है; फिर भी उसके प्रयोग पर वह चुप्पी बरकरार है। हालांकि हर मनुष्य कभी न कभी इस पर ध्यान दिए बिना नहीं रह पाता कि हिंसा से किसी बात का वास्तविक समाधान नहीं होता। अपने युग में टॉल्सटॉय ने यह महसूस किया था कि, ''समाजवाद, साम्यवाद, अराजकतावाद, मुक्तिसेना (सॉल्वेशन आर्मी), अपराध की बढ़ती प्रवृत्तियां, बेरोजगारी और धनी वर्ग की नाहक और बेहिसाब ऐशो इशरत, गरीब जनता के भयंकर कष्ट, आत्महत्याओं की तेजी से बढ़ती हुई संख्या—ये सब उसी अंतर्विरोध के लक्षण हैं जो समाज में अनिवार्य रूप से मौजूद है और जिसका समाधान नहीं मिल पा रहा है।''

वह स्थिति आज भी नहीं बदली है। लगभग एक शताब्दी के बाद भी मानव समाज बुनियादी रूप से वहीं का वहीं है। स्वयं टॉल्सटॉय के देश में उनकी शिक्षाओं के एकदम विपरीत रास्ते पर चल कर एक मार्क्सवादी-लेनिनवादी, हिंसात्मक क्रांति की गई, और फिर दावा किया गया कि मानव मुक्ति का महामार्ग मिल गया है और वह तमाम समस्याएं सुलझा ली गई हैं जिसके लिए आज तक सभी दार्शनिक मनीषी चिंतित होते रहे थे। पर वह रूसी समाज पर किया गया सात दशक लंबा एक क्रूर और पाखंड भरा प्रयोग मात्र साबित हुआ और रूस आज फिर उतना ही दु:खी, पीड़ित और वहीं का वहीं खड़ा है।

रूस में लेनिनवादी प्रयोग के विपरीत गांधीजी ने पहले ट्रांसवाल (दक्षिण अफ्रीका) और फिर भारत में अहिंसात्मक प्रतिरोध और रचनात्मक क्रियाकलाप का अपना संयुक्त आंदोलन सफलता पूर्वक चलाया। अपने पूर्णत: अहिंसात्मक दर्शन के प्रयोग द्वारा उन्होंने भारत से विदेशी शासन को खत्म करने का बीड़ा उठाया था, और कौन कह सकता है कि उन्हें सफलता नहीं मिली थी? न केवल शासित भारतीय वरन शासक अंग्रेज भी उनके दर्शन और कार्य की अर्थवेता महसूस करते थे। लोग उन्हें चमत्कारी पुरुष तक मानने लगे थे। पर दुर्भाग्यवश बाद में कुछ हिंदुओं की अधीरता, उनका हिंसा के आसान रास्ते पर चलने का आकर्षण और एक बड़े मुस्लिम हिस्से द्वारा गांधीजी का साथ न देने से उनका अनोखा आंदोलन और प्रयोग अपनी मंजिल तक नहीं पहुंच सका, यद्यपि वे स्वयं अंत तक उसमें लगे रहे। गांधीजी बूढ़े भी हो चले थे, और बहुत लोगों को देश की आजादी सामने दिखने लगी थी। इन हालातों में कई लोगों के बीच सत्ता की लालसा हावी होने लगी और सत्य-अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह को अध-बीच में छोड़ वे सभी यूरोपीय देशों की नकल की दिशा में मुड़ गये। दुर्भाग्यवश गांधीजी के नजदीकी सहयोगियों में बहुतों ने उनकी अहिंसा को भारत के स्वाधीनता संघर्ष में एक उपयोगी तकनीक मात्र समझ कर स्वीकार किया था, और काम हो जाने के बाद उसे छोड़ कर कहीं और बढ़ गए थे।

इसीलिए, आजादी के बाद भारत का रास्ता वह नहीं हुआ जिसकी गांधीजी ने कल्पना की थी। क्योंकि उनके निकटतम सहयोगियों ने भी गांधीजी के दर्शन को अव्यवहारिक ही माना था। अत: सत्ता संभालने पर उन्होंने भारत को उसी औद्योगिक, उपभोगवादी सभ्यता के ढर्रे पर डाला जिस पर यूरोप चल रहा था। भाषा, शिक्षा, धर्म, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, विदेश नीति आदि किसी मामले में गांधीजी का दर्शन भारत का पथप्रदर्शक नहीं बन सका। परिणाम यह हुआ कि हम किसी क्षेत्र में यूरोप की नकल कर कुछ असल नहीं बन सके हैं। सत्ता में रहे दल या नेता शायद यह स्वीकार न करें। पर पिछले पचास वर्ष में स्वतंत्र भारत की *आम जनता* के हाथ में उपलब्धि क्या है, इसके जमा-बाकी में अधिकांश विश्लेषक निराशा के शब्द ही कह पाते हैं।

रूस की स्थिति कुछ मायनों में और बुरी है। साम्यवाद की दयनीय विफलता के बाद यह महान देश अपनी कोई राह ही नहीं ढूंढ पा रहा है। वहां के सत्ताधारी दिन-रात विदेशों से कर्ज ले रहे हैं और किसी को पता नहीं है कि कल वहाँ क्या होगा। मनमाना कर्ज, अनाप-शनाप खर्च, विलासिता, संसाधनों की बर्बादी से रूस की अवस्था उस व्यक्ति की तरह हो गई है जो एक गहरे गड्ढे में खड़े होकर उसे दिन-रात खोद रहा है, और अधिकाधिक नीचे जाता जा रहा है। यह कितना दु:खद है कि आज दुनिया में उस देश की पहचान खो

गई है जिसने संसार को टॉल्सटॉय, पुश्किन, चेखव और दॉस्ताएवस्की जैसी विभूतियां दी हैं।

दूसरी ओर सबसे विकसित माने जाने वाले संयुक्त राज्य अमरीका की गति यह है कि शताब्दी के अंतिम वर्ष में जगह-जगह पर स्कूली बच्चे अंधाधुंध गोलियां चलाकर अपने सहपाठियों की जान ले रहे हैं। वे गरीब बच्चे नहीं हैं, अनाथ भी नहीं, पागल नहीं, कोई अपराधियों के साथ पले-बढ़े भी नहीं। न ही ऐसी वारदात एक-दो जगह किसी अपवाद के रूप में हो गई। पिछले कई महीनों में विभिन्न अमरीकी शहरों में यह हो रहा है और पूरा अमरीकी समाज स्तब्ध है। आखिर कहां पर गलती है? सब कुछ तो है अमरीका में ! सारे एशिया, अफ्रीका और पिछड़े समाजों के व्यापारी, बुद्धिजीवी, वैज्ञानिक, खिलाड़ी और मजदूर वहीं तो जा बसना चाहते हैं। अमरीका दुनिया का निर्विवाद नेता और आकर्षण है। वहां क्या परेशानी, कौन सी मनोविकृति है?

परेशानी यह है कि तमाम औद्योगिक और तथाकथित विकसित समाजों की आत्मा रुग्ण है। उनके सभी क्रिया-कलाप इस प्रस्थापना पर चलते हैं कि मनुष्य का केवल शरीर होता है, आत्मा नहीं। होती भी है तो उसका कुछ खास प्रयोजन नहीं। जीवन दूसरी बातों से चलता है। हर व्यक्ति को अधिक से अधिक रुपए और अधिक से अधिक चीजें चाहिए। और फिर अच्छी से अच्छी चीजें और ज्यादा रुपए। इसी के लिए अर्थनीति, राजनीति, कूटनीति, झगड़े, घात और युद्ध होते हैं। स्टॉक बाजार, सेंसेक्स, कम्प्यूटर तकनीक, आदि उनके सभी मंत्र-तंत्र सिर्फ मनुष्य के ऐंद्रिक सुखों के लिए नई-नई, लुभावनी वस्तुओं के भंडार बनाने की गरज पूरी करने में लगे रहते हैं। इसके बाद उनके व्यावहारिक दर्शन का अंत हो जाता है। और वस्तुतः इसीलिए ऐसी घटनाओं के सामने वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं।

गांधीजी के दर्शन में आत्मा के उस रोग की पहचान और निदान दोनों ही है। मगर यह दर्शन बाजार के दर्शन से पूर्णतः भिन्न है। इसका मानना है कि (क) व्यक्ति का वास्तविक सुख दूसरे लोगों को सुखी देखने में होता है। अर्थात् सबकी भलाई में ही किसी व्यक्ति विशेष की भलाई है। (ख) लोगों की जरूरत पूरी करने वाला हर काम एक सा महत्वपूर्ण है, अतः हर व्यक्ति को अपने काम से समान रूप से जीविका कमाने का अधिकार है। (ग) श्रम करके जिया जाने वाला जीवन सर्वश्रेष्ठ है। अतः एक किसान और कारीगर का जीवन ही सबसे अच्छा, जीने योग्य जीवन है।

गांधीजी का मूलभूत दर्शन यह था, **''जीवन के अलावा और कोई धन नहीं होता।** वही देश सबसे धनी है जहां सबसे अधिक संख्या में भले और प्रसन्न इंसान रहते हों। वह मनुष्य ही सबसे धनी है जो अपने जीवन के कार्य को उच्चतम दक्षता और दिशा देने के बाद अधिक से अधिक लोगों को तन-मन-धन से अधिकाधिक सहयोग और सद्भाव दे पाता है।'' अब जो लोग प्रति-व्यक्ति उत्पाद और आय के सूचकांकों में विश्वास रखते हैं; कभी योजना तो कभी बाजार और उदारीकरण को मूल मंत्र समझते हैं; कभी जापान तो कभी एशियन टाइगर्स को अपना आराध्य समझते हैं— उन्हें गांधीजी की यह बात समझ में नहीं आएगी। मगर तब वे लोग अपने आदर्श, पश्चिम के विकासित समाजों के नए-नए रोगों को भी नहीं समझ पाते। न ही उन विकसित समाजों के गुरू उस पर ऊंगली रख पाते हैं और नतीजन तरह-तरह की नीम-हकीमी से उसे ठीक करने की कोशिश करने में लगे रहते हैं।

दुनिया अभी इतनी वयस्क नहीं हुई है कि गांधीजी के दार्शनिक विचारों को स्वीकार कर सके। उनका सत्य, प्रेम, न्याय और अहिंसा का जीवन-दर्शन अभी तक कहीं विजय नहीं हासिल कर सका है। यद्यपि रोजमर्रे के जीवन में लोग अक्सर उसकी उपयोगिता समझ पाते हैं, पर समाज और देश की नियति निर्धारित करने में उसे अभी तक अनुपयुक्त ही माना जाता है। आशा की जा सकती है कि अगली सदी में लोग युद्ध, हिंसा और क्रांतिवाद की व्यर्थता समझ लेंगे और शुद्ध व्यावहारिक दृष्टि से भी, इसे फिर से पढ़ेंगे और गुनेंगे : **''लोग तभी सुखी होंगे जब वे न्यायपूर्ण और सम्यक् जीवन बिताना सीख लेंगे। बाकी सब न केवल व्यर्थ है, बल्कि सीधे विनाश की ओर ले जाता है। लोगों को किसी न किसी तरह धनी बनने की शिक्षा देना उनका भारी नुकसान करना है।''**

(महात्मा गांधी, 'सर्वोदय', *अन्टू दिस लास्ट* का पुनर्वाचन)

ए (बी एवं सी)/3007, बसंत कुंज, नई दिल्ली-110070

अरुणाचल प्रदेश का हस्तशिल्प

—डॉ० वीरेंद्र कुमार सिंह

भारत की उत्तर-पूर्व सीमा पर अवस्थित अरुणाचल प्रदेश अपने नैसर्गिक सौंदर्य और विविधवर्णी संस्कृति के कारण देश में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। वनाच्छदित पर्वतों, हरिताभ घाटियों और असंख्य प्रकार के वन्य-प्राणियों से श्रीसंपन्न अरूणाचल की मनोरम भूमि पर्यटकों व नृवैज्ञानिकों के लिए आर्कषण का केन्द्र है। लोहित, सियाड., सुबनसिरी, दिहिड, इत्यादि नदियों से अभिसिंचित प्रदेश की पावन धरती को भगवान भाष्कर सर्वप्रथम अपनी रश्मि विकीर्ण कर प्रकाश से आप्यायित करते हैं। इसलिए अरूणाचल को उगते हुए सूर्य की भूमि कहा जाता है। इसकी सीमा चीन, म्यांमार और भूटान की अंतर्राष्ट्रीय सीमा को स्पर्श करती है। पहले इस क्षेत्र को उत्तर-पूर्व सीमांत एजेंसी (नेफा) के नाम से जाना जाता था। 21 जनवरी, 1972 को इसे केन्द्र शासित प्रदेश बनाया गया। इसके उपरांत 20 फरवरी, 1987 को इसे पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ। 2001 की जनगणना के अनुसार प्रदेश की जनसंख्या लगभग दस लाख साठ हजार है।

यह एक जनजाति बहुल प्रदेश है। यहां लगभग 25 प्रमुख जनजातियां निवास करती हैं। इन जनजातियों की अनेक उपजातियां भी हैं। इनके पास समृद्ध विरासत, उन्नत परम्पराएं मौखिक लोक साहित्य, लोकरंजक आध्यात्मिक प्रतीक हैं। विभिन्न जनजातियों के रीति रिवाज, ईश्वरीय प्रतीकों, लोकमान्यताओं, पूजा विधियों में पर्याप्त भिन्नता हैं परंतु प्रकारांतर से सभी जनजातियां प्रकृति पूजक हैं। अरूणाचल में निम्नलिखित प्रमुख जनजातियां निवास करती हैं :—

आदी, निशि, आपातानी, मीजो, नोक्ते, वांचू शेरदुक्पेन, तांग्सा, तागिन, हिलमिरी, मोम्पा, सिंहफो, खाम्ती, मिश्मी, आका, खंबा, बुगुन, मेंबा, सुलुड., मिसिड., मिकिर इत्यादि। अरूणाचल में हस्तशिल्प की परंपरा सदियों पुरानी है। ये हस्तकलाएं उतनी ही प्राचीन हैं जितना यहां का जीवन। हस्तशिल्प प्रदेश की आर्थिक-सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन हस्तकलाओं में प्रदेश की संस्कृति प्रतिबिंबित होती है। यहां के निवासियों के कुशल हाथों से जो वस्तुएं निर्मित होती हैं उसमें अरूणाचली लोकजीवन की छाप स्पष्टत: परिलक्षित होती है। यहां के निवासी अपनी पैतृक तकनीक से सभी प्रकार की गृहोपयोगी वस्तुएं बनाते हैं। ये वस्तुएं अपनी कारीगरी, बनावट, सुन्दरता, रंग-संयोजन और कलात्मकता से हमारा मन मोह लेती हैं। दुर्गम क्षेत्र में रहते हुए भी हस्तकला में ऐसी दक्षता देखकर आश्चर्य मिश्रित खुशी होती है। विशेष रूप से उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इन शिल्पकारों को अलग से प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है। पुत्र अपने पिता से इसका प्रशिक्षण प्राप्त करता है और फिर उससे उसका पुत्र सीखता है। इस प्रकार यह कला पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती रहती है।

अरूणाचली हस्तशिल्प को मुख्यत: निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है :—

1. बांस और बेंत की वस्तुएं बनाना,
2. काष्ठशिल्प और मुखौटा बनाना,
3. कताई-बुनाई
4. कालीन बनाना
5. अन्य हस्तशिल्प

1. बांस और बेंत की वस्तुएं बनाना :—अरूणाचल प्रदेश की लगभग साठ प्रतिशत भूमि वनाच्छादित हैं। इन वनों में बांस और बेंत की बहुतायत हैं। बांस और बेंत की वस्तुएं बनाने के लिए कच्चे माल आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। इसलिए बांस तथा बेंत की वस्तुएं बनाने में अधिकांश अरूणाचली जनजातियां सिद्धहस्त हैं। विभिन्न आकार-प्रकार और उपयोग की टोकरियां, सजावट की वस्तुएं, गृहोपयोगी बर्तन, आभूषण, युद्ध के उपकरण, जलपात्र इत्यादि के निर्माण में बांस और बेंत का उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त पुल बनाने तथा घर बनाने में भी बांस-बेंत का भरपूर उपयोग होता है। बांस-बेंत के कार्यों में पुरुष वर्ग ही विशेष रूप से

कुशल होता है। यह पुरुषों का कार्य माना जाता है लेकिन महिलाओं के लिए भी यह प्रतिबंधित नहीं है। टोकरियां विभिन्न आकार-प्रकार की होती हैं, जैसे—नली के आकार की, बेलनाकार, सूच्याकर, आयताकर इत्यादि। इन टोकरियों का उपयोग अनाज एवं जलावन की लकड़ियां ढोने के लिए, अन्न का भंडारण करने के लिए, मदिरा रखने के लिए, मछली पकड़ने के लिए होता है। इसके अतिरिक्त सोने तथा धान को सुखाने के लिए चटाई, अन्न को साफ करने के लिए सूप, कंघी, चम्मच, थाली, झोला, पानी लाने का पात्र, मग इत्यादि भी बांस-बेंत से निर्मित प्रमुख उत्पाद हैं।

निशि जनजाति के लोग बांस-बेंत की वस्तुएं बनाने में सिद्धहस्त हैं। बेंत से बनी टोकरी को निशिंग भाषा में ''एगे'' और ''एबर'' कहा जाता है। इसका उपयोग अनाज ढोने के काम में होता है। धान बोने के समय बीज रखने के लिए जिस टोकरी का उपयोग होता है उसे ''चंगचा'' कहा जाता है। निशिंग पुरुष अपनी पीठ पर बांस से बना एक प्रकार का झोला लटकाते हैं जिसे ''नारा'' कहा जाता है। आदी जनजाति के लोग बांस और बेंत की कलात्मक वस्तुएं बनाने में कुशल हैं। हिलमीरी जनजाति के लोगों की हस्तकलाएं अन्य जनजातियों की अपेक्षा कम उन्नत हैं। इनका ''बोप्या'' बहुत प्रसिद्ध है। यह बेंत से बना टोप है जो धनेश पक्षी की चोंच तथा अन्य पक्षियों के पंखों से सुसज्जित होता है। आपातानी जनजाति की कारीगरी और कलात्मकता बांस-बेंत से बनी वस्तुओं में देखने को मिलती है। आपातानी लोग बांस से मदिरा पीने का मग बनाते हैं जिसे ''तुर्ला'' कहा जाता है। नोक्ते जनजाति के लोग भी बांस-बेंत के कार्यों में सिद्धहस्त होते हैं। अनाज और जलावन ढोने वाली टोकरियां बड़ी होती हैं। भंडारण करने वाली टोकरियां भी चित्ताकर्षक होती है। बांस और बेंत की सजावटी वस्तुओं की नयनाभिराम कलात्मकता मन को मोह लेती है। सजावटी टोकरी को ''वानतांग'' कहा जाता है। नृत्य करते समय नोक्ते पुरुष इसे धारण करते हैं।

मीजी (धमाई) समुदाय में भी बांस और बेंत द्वारा कलात्मक सामान बनाए जाते हैं। इस समाज की बनायी टोकरियां अन्य अरूणाचली जनजातियों से भिन्न होती हैं। मीजी लोग बांस से मदिरा छानने वाला पात्र, टिफिन बॉक्स इत्यादि बनाते हैं। अन्य अरूणाचली जनजातियां जैसे, सिंगफो, वांचू, मिश्मी, खाम्ती, मोंपा, आका, सुलुंग इत्यादि अपनी परंपरागत विधि से बांस और बेंत की टोकरी, चटाई, टोप, थाली, मग, चम्मच, सजावटी वस्तुएं और अन्य घरेलू पा बनाती हैं। बांस और बेंत से बने आभूषणों की सुन्दर चित्ताकर्षक होती हैं।

2. **काष्ठशिल्प और मुखौटा बनाना :**—काष्ठशिल इस प्रदेश की प्राचीन हस्तकला है। इस कला में पश्चिम कामेंग जिले के मौंपा, लोहित जिले के खाम्ती तथा तिर जिले के वांचू लोग विशेष दक्ष होते हैं। लकड़ी की प्याल मग, थाली, गृहोपयोगी बर्तन, फूलदान, मानव एवं पशु पक्षियों की मूर्तियां, देवी-देवताओं की मूर्तियों से इ जनजातियों के कला-सौष्ठव और सौंदर्याभिरूचि का परिच मिलता है। इनके कुशल हाथों द्वारा निर्मित सुकुमार कलाअ में प्रकृति और पुरूष का मणिकांचन संयोग दृष्टिगोचर होत है। सुंदर नक्कौशी से ये वस्तुएं सहज ही मन को मोह लेत हैं। इनकी नक्काशी अर्थपूर्ण होती हैं तथा अरूणाचल क गौरवशाली प्राचीन संस्कृति को रेखांकित करती है। इन वस्तुअ में आनुपातिकता, मौलिकता और रचनात्मकता के दर्शन हो हैं। मोंपा काष्ठशिल्पी सुंदर मग, बर्तन, फूलदान और नृत्य में प्रयुक्त होनेवाले मुखौटे बनाते हैं। वे लोग लकड़ी क प्याली, मेज, थाली आदि वस्तुएं बनाते हैं तथा उन्हें विवि रंगों से रंगकर अधिक आकर्षक बनाते हैं। इनकी कलाओं म बौद्ध धर्म और दर्शन की छाप मिलती है। अरूणाचल के खांबा एवं मेंबा जनजातियों के हस्तशिल्प पर भी बौद्ध धम का प्रभाव है। वे लोग दानव तथा दैवी शक्तियों के मुखौट बनाते हैं। खाम्ती जनजाति भी काष्ठशिल्प के क्षेत्र में निपुण होती है। इस जनजाति के लोग लकड़ी की धार्मिक मूर्तियां खिलौने, गृहस्थी की वस्तुएं और सजावटी वस्तुएं बनाते हैं वांचू जनजाति काष्ठशिल्प के क्षेत्र में अग्रगण्य मानी जात है। अरूणाचल का वांचू क्षेत्र काष्ठशिल्प का सबसे प्रमुख केन्द्र है। वांचू पुरुष इस कला में सिद्धहस्त होते हैं। इस कल में इस जनजाति का प्राचीन सांस्कृतिक जीवन और परंपर प्रतिबिम्बित होती है। मनुष्यों और जनवरों की मूर्तियां बनान वांचू काष्ठशिल्पियों को सर्वाधिक प्रिय है। विभिन्न मुद्राअ में स्त्री-पुरुषों की मनोमुग्धकारी मूर्तियां इनकी उन्नत पैतृक कला के प्रमाण हैं। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि शिल्पकारों द्वारा बनायी गई मानव मूर्तियों में अन्य अंगों की अपेक्षा उसके सिर को बनाने में बहुत ध्यान दिया जाता है ज इस बात का संकेत देता है कि वांचू लोग पहले मनुष्य क शिकार करते थे। वांचू लोग अपने युवागृहों को लकड़ी स बनी मानव आकृतियों, पशु-पक्षियों की मूर्तियों आदि स सुसज्जित करते हैं। युवागृह के खंभों पर भी चित्र उकेरे जात

हैं। चीफ के घरों में भी काष्ठशिल्पी की कलात्मकता देखी जा सकती है।

अरूणाचल में मुखौटा का निर्माण और उपयोग कब आरंभ हुआ, इसके संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। लेकिन ऐसा माना जाता है कि इस प्रदेश में बौद्ध धर्म के प्रसार के साथ ही इनकी संस्कृति में अदृश्य और अलौकिक शक्तियों के मानवीकरण के उद्देश्य से मुखौटे का प्रवेश हुआ। इन मुखौटों का प्रयोग मनुष्य जगत पर अलौकिक शक्तियों के अच्छे-बुरे प्रभाव को अभिव्यक्त करने के लिए होता है। इसका उपयोग मुख्यत: धार्मिक अवसरों पर प्रस्तुत किए जाने वाले नृत्यों में होता है। इसे मुखौटा नृत्य कहा जाता है। इसके माध्यम से धार्मिक और नैतिक संदेशों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया जाता है। बौद्ध धर्मानुयायी जनजातियों में मुखौटा नृत्य की परंपरा अति प्राचीन है। मुखौटा एक निर्जीव वस्तु नहीं वरन् एक सजीव पात्र है। मोंपा, वांचू, मेंबा, खांबा, खाम्ती इत्यादि जनजातियां मुखौटा निर्माण में अत्यंत कुशल हैं। मुखौटों का निर्माण स्थानीय प्रकार के एक पेड़ की लकड़ी से किया जाता है। उसे अनेक रंगों से रंगकर प्रभावशाली बनाया जाता है। इसकी चित्रकारी में कलाकार अपनी कल्पना-शक्ति और रंग-बोध का उपयोग कर अपनी कला-निष्ठा का परिचय देता है।

3. **कताई-बुनाई :**—कताई-बुनाई महिलाओं का कार्य है। हस्तकरघा पर कपड़े बुनने की परम्परा यहां बहुत प्राचीन है। यहां की महिलाएं अपने घरेलू उपयोग के कपड़े अपने पारंपरिक और साधारण किस्म के करघे पर बुनती हैं। आजकल व्यवसायिक स्तर पर भी कपड़ों का उत्पादन होने लगा है। आजकल बाजार से सूत खरीदे जाते हैं तथा उससे जैकेट, स्कर्ट, सूती रोएंदार कंबल, झोला, चादर, लुंगी इत्यदि वस्त्र बनाए जाते हैं। इन परिधानों में अरुणाचली महिलाओं के रंग-बोध और कलात्मकता के दर्शन होते हैं।

आपातानी महिलाएं बुनाई की कला में अपेक्षाकृत अधिक कुशल हैं। ये सुंदर बहुरंगे शाल, स्कर्ट और लुंगी बनाती हैं। आदि जनजाति की महिलाएं भी बुनाई के कार्य में सिद्धहस्त होती हैं। गालोंड महिलाएं उत्तम किस्म के स्कर्ट बनाती हैं। इसी प्रकार शेरदुकपेन शॉल, मिश्मी शॉल तथा जैकेट, वांचू झोला इत्यादि अरुणाचल के विशिष्ट और उल्लेखनीय उत्पादन हैं। वांचू महिलाएं सफेद कपड़े पर गहरे लाल, पीला, काला और हरे रंगों का प्रयोग कर चित्ताकर्षक झोला बनाती है। सूती कंबल भी वांचू लोगों का विशिष्ट उत्पाद है। सिंगफो जनजाति की कला उनके द्वारा बुने हुए परिधानों में प्रतिबिंबित होती है। इनका सबसे प्रमुख उत्पाद है पुरुषों और महिलाओं की पगड़ी, महिलाओं की स्कर्ट, पुरुषों की लुंगी और झोला। तांग्सा जनजाति की महिलाएं झोला तथा लाल, सफेद एवं नीले रंगों के सुंदर स्कर्ट बनाती हैं। दिगारू मिश्मी महिलाएं कोट, लुंगी, मेखला, सफेद कमीज और शॉल बनाती हैं।

अरुणाचल प्रदेश की भिन्न-भिन्न जनजातियों का अपना अलग-अलग परिधान है। इन परिधानों का निर्माण घर में ही महिलाओं द्वारा किया जाता है। अरुणाचलवासी वस्त्रों के मामले में आत्मनिर्भर हैं। वे अपने उपयोग के सभी कपड़ों का निर्माण घर पर ही कर लेते हैं।

4. **कालीन बनाना :**—कालीन बनाने में पश्चिमी कामेंग जिले की मोंपा जनजाति विशेष रूप से कुशल है। विभिन्न आकार-प्रकार की नयनाभिराम बनावट को देखकर शिल्पकारों के हाथों का कौशल अभिभूत कर लेता है। कालीनों पर ड्रेगन अथवा अजगर के चित्र बनाए जाते हैं। मोंपा महिलाएं ही कालीन बनाने का कार्य करती हैं। इनका रंग-मिश्रण और रंगों का चयन अनोखा है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में इन कालीनों की बहुत मांग है। पहले कालीनों का निर्माण घरेलू उपयोग के लिए किया जाता था लेकिन मांग बढ़ने के कारण अब व्यावसायिक स्तर पर इसका उत्पादन किया जाने लगा है।

5. **अन्य हस्तशिल्प :**—कागज बनाना, हाथी दाँत के सामान बनाना, चमड़े की वस्तुएं बनाना आदि इस प्रदेश के अन्य हस्तशिल्प हैं। मोंपा लोग स्थानीय किस्म के पेड़ से कागज बनाते हैं जिस पर धार्मिक ग्रंथ और संदेश लिखे जाते हैं। जिस पेड़ से कागज बनाया जाता है उसे स्थानीय भाषा में ''सुस्को'' कहा जाता है। आभूषण यहां के निवासियों को बहुत प्रिय है। वे लोग अपनी परंपरागत विधियों से आभूषण बनाते हैं। गुरियों के आभूषण सबसे अधिक प्रचलित हैं। विभिन्न रंगों और आकार-प्रकार की गुरियों से कंठहार, कर्णफूल, माला, चूड़ी इत्यादि बनाए जाते हैं। गुरियों के अतिरिक्त बांस, बेंत, कांच, जंगली बीज, चांदी आदि से भी आभूषण बनाए जाते हैं। बांस से बनी चूड़ी और कर्णफूल, जंगली बीजों की माला, चांदी के कंठहार बहुत चित्ताकर्षक होते हैं। निशिंग जनजाति के लोग पीतल, चांदी और कांसे से कलात्मक गहने बनाते हैं। वे पीतल की थाली और धूम्रपान करनेवाली पाइप भी बनाते हैं। वे आभूषणों में पक्षियों के

पंख लगाकर उसे अधिक आकर्षक रूप प्रदान करते हैं। आदि जनजाति के लोग पहले पीतल की वस्तुएं बनाने में अधिक कुशल होते थे। प्रदेश की कुछ जनजातियां आज भी पीतल के गहने बनाती हैं। आका जनजाति के लोग बांस की चूड़ियाँ और कर्णफूल बनाते हैं। इन गहनों की सुंदरता देखने योग्य होती है। वांचू लड़कियां गुरियों के कलात्मक गहने बनाती हैं। ईदु मिश्मी लोग चांदी के आभूषण बनाने में सिद्धहस्त होते हैं। ईदु मिश्मी महिलाएं चांदी के कंठहार, माला और कर्णफूल बनाती हैं। हाथी दांत के गहने भी बनाए जाते हैं। आपातानी महिलाएं अपने नाक में ठेपी पहनती हैं जो अन्य जनजातियों से विशिष्ट हैं।

अरुणाचल प्रदेश सरकार ने हस्तशिल्प के विकास और उन्नयन के लिए अनेक कदम उठाए हैं। पारंपरिक शिल्पकारों को उचित प्रशिक्षण एवं ऋण देकर उद्योग स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। अनेक हस्तकला केन्द्र स्थापित किए गए हैं जहां पर स्थानीय निवासी प्रशिक्षण प्राप्त कर अपनी पैतृक कला की गुणवत्ता में सुधार करते हैं। पारंपरिक कला के साथ आधुनिक तकनीक का प्रयोग कर उत्पादन में वृद्धि की जाती है। प्रदेश की दस्तकारी को प्रोत्साहित करने तथा उसे लोकप्रिय बनाने के लिए सरकार राज्य और राज्य से बाहर शिल्प मेले और प्रदर्शनी आयोजित करती है। सन् 1996 में देश की राजधानी नई दिल्ली में आयोजित हस्तशिल्प प्रदर्शनी में अरुणाचल के हस्तशिल्प की बहुत प्रशंसा हुई थी। हस्तशिल्प इस प्रदेश का सबसे बड़ा कुटीर उद्योग एवं आय का प्रमुख स्रोत हैं। इसके लिए कच्चे माल तथा कुशल हाथ भी बहुतायत में उपलब्ध हैं। प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश बहुत समृद्ध है। यहां के हस्तशिल्पों में प्रदेश के निवासियों की आत्मा बसती है। इसमें जनजातियों की प्राचीन संस्कृति सुरक्षित है तथा इनके द्वारा स्थानीय प्रतिभाओं को अपनी कलाभिव्यक्ति का अवसर मिलता है। यदि इन पैतृक कलाओं का उचित दिशा में विकास हो एवं शिल्पकारों को उचित निर्देशन तथा बाजार उपलब्ध कराया जाए तो यह राज्य की अर्थव्यवस्था की धुरी बन सकता है। परिवहन साधनों का अभाव तथा अन्य भौगोलिक कारणों से बाजार की सुविधा उपलब्ध नहीं है, इसलिए यहां के उत्पादकों को उनका उचित पारिश्रमिक नहीं मिल पाता है। आवागमन के साधनों का विकास एवं प्रदेश की अनेक जगहों को पर्यटन स्थल के रूप में विकसित कर बाहर के पर्यटकों को आकर्षित किया जा सकता है। इससे यहां की उत्पादित वस्तुओं की बिक्री होगी और शिल्पकारों की आर्थिक-सामाजिक स्थिति में बदलाव आएगा।

संदर्भ : —

1. सं. डा. पी.सी. दत्ता एवं डा. डी. के. द्वारा—हैंडीक्राफ्ट ऑफ अरुणाचल प्रदेश-(1990)—शोध निदेशालय, अरुणाचल प्रदेश सरकार, ईटानगर,
2. सुबनसिरी जिला गजेटियर (1980),
3. तिरप जिला गजेटियर (1981)

❑❑

हिंदी प्राध्यापक, हिंदी शिक्षण योजना, गृह मंत्रालय जीपीओ, परिसर पटना-800001

समुद्र में कशीदाकारी : प्रवाल भित्तियां

—बजरंग लाल जेठू

अगस्त-सितम्बर 2002 में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन, जौहान्सबर्ग में धरती पर पर्यावरणीय असंतुलन के कारण होने वाले परिवर्तनों पर चिंता व्यक्त की गई। धरती की गर्माहट बढ़ने से समुद्री जल स्तर में वृद्धि के साथ-साथ समुद्र की पारिस्थितिकी में परिवर्तन होगा। इस पारिस्थितिकी परिवर्तन में सबसे बड़ा खतरा प्रवाल भित्तियों को है। प्रवाल भित्तियां या मूंगे की चट्टानें हमारे लिए आर्थिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। देखते हैं क्या हैं ये प्रवाल भित्तियां।

प्रवाल भित्तियां कहलाने वाली मूंगे की चट्टानें हमारे समुद्री जगत के सौंदर्य की प्रतिनिधि संरचनाएं हैं। थल जगत में वर्षा पोषित "विषुवत क्षेत्रीय वन" समृद्ध पारिस्थितिकी तंत्र को व्यक्त करते हैं। ठीक इसी प्रकार प्रवाल भित्तियां भी अपने चमकदार रंगों व विभिन्न आकृतियों के भीतर एक विशाल सजीव जगत संजोए हुए हैं। क्या हमने कभी विचार किया है कि समुद्र में हजारों किलोमीटर तक फैली ये प्रवाल भित्तियां और इनके प्रवाल कहां से आए हैं? मन्नार की खाड़ी या मालद्वीप की यात्रा करते समय हमने शायद ही सोचा हो कि सुन्दरता की ये नायाब लड़ियां कैसे सृजित हुई होंगी?

समुद्र में स्थित ये प्रवाल भित्तियां अर्थात् मूंगे की चट्टानें वास्तव में कैल्सियम कार्बोनेट के कंकाल (ढांचे) वाले प्रवालों से ही निर्मित चट्टानें हैं। इसमें भी मुख्य बात यह है कि इन सुन्दर चट्टानों का निर्माण करने वाले मूंगे (प्रवाल) भी एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया के मार्फत एक बहुत सूक्ष्म जलीय जीव से निर्मित होते हैं। इस सूक्ष्म जलीय जीव को मूंगे (प्रवाल) का जल-जीव या पोलिप कहा जाता है। वस्तुत: पोलिप एक अकशेरूकीय जीव है।

क्या है मूंगा :—प्रत्येक मूंगा अर्थात् प्रवाल हजारों पोलिपों की एक कालोनी होती है। वृद्धिशील पोलिप समुद्री जल से कैल्सियम कार्बोनेट (चूना-पत्थर) संचित करते हैं और इससे अपने इर्द-गिर्द सघन कंकाल (ढांचा) बनाते रहते हैं। पोलिपों की कंकालीय कालोनी ही प्रवाल या मूंगा है। इन पोलिपों के ये कैल्सियम कार्बोनेट ढांचे आकार व आकृति में भिन्नता लिए हुए होते हैं। इसी भिन्नता के आधार पर प्रवालों को तस्तरीनुमा प्रवाल, संघन प्रवाल, खुंबी प्रवाल और शाखित प्रवाल जैसे नाम दिए गए हैं।

कैसे बनता है मूंगा :—हमने देखा कि प्रवाल अर्थात् मूंगे का निर्माण प्रवाल जल-जीव या पोलिप से होता है। इस पोलिप में लगभग एक सेन्टीमीटर लम्बी एक थैली जैसी रचना होती है जिसके ऊपरी सिरे पर अग्रमुखीय तस्तरी सा मुख होता है। यह मुख सीधा आमाशय में खुलता है। मुख के चारों और अंगुलियों जैसे संस्पर्शकों के कई घेरे होते हैं। कैल्सियम कार्बोनेट का कंकाल इसकी तली पर स्थित होता है।

मूंगे की निर्माण प्रक्रिया वास्तव में पोलिपों की वंशवृद्धि ही है। पोलिपों में नर व मादा जननांग अलग-अलग पोलिपों में होते हैं परन्तु ज्यादातर मामलों में नर व मादा जननांग एक ही पोलिप में होते हैं। वयस्क पोलिप द्वारा छोड़े गए शुक्राणु किसी अन्य पोलिप के मुख में प्रविष्ट होकर निषेचन क्रिया संपन्न करते हैं। इसके बाद मुक्त प्लावी लार्वा मुख से ही बाहर आता है और एक उपयुक्त आधार पर स्थापित होकर एक नए पोलिप के रूप में विकसित होता है। इसी पोलिप से एक कलिका फूटती है जो पूर्णत: इसकी नकल होती है। यह कलिका अलग होकर अपने लिए अलग खोल की रचना करती है। इस प्रकार कलिका निर्माण निरन्तर चलता रहता है और कालोनी का आकार बढ़ता रहता है। अन्तत: हजारों लाखों पोलिपों की एक कालोनी बन जाती है। इस तरह बनी प्रत्येक कालोनी एक प्रवाल होती है। यहां यह भी ध्यान देने की बात है कि कलिका निर्माण से केवल कालोनी के आकार में वृद्धि होती है। नई कालोनी का निर्माण तो इससे अलग हुए हिस्से से होता है या फिर प्लावी लार्वा के गतिमान होने से होता है।

प्रवाल भित्तियां :—हम जान गए कि प्रवाल वास्तव में हजारों पालिपों की संयुक्त कालोनियां हैं तथा पोलिपों में कैल्शियम कार्बोनेट का कंकाल होता है। बस ये लाखों

कठोर कंकाल ही मिलकर हजारों वर्षों में प्रवाल भित्तियों का रूप धारण कर लेते हैं। स्पष्ट है इनके निर्माण की गति अत्यन्त धीमी है।

पोलिपों के मुख पर स्थित संस्पर्शक लगातार गतिशील रहते हैं। गतिशील संस्पर्शक जल में उपस्थित छोटे प्लावकों को पकड़कर मुख द्वारा सीधे आमाशय में पहुंचाते हैं। यह कार्य रात में ज्यादा होता है तथा पोलिप की भोजन आपूर्ति कहलाता है। संस्पर्शक जल में डूबते हुए कणों को भी एक दूसरे संस्पर्शक पर गिरने व जमने से रोकते हैं जिससे ऐसे कण तली की ओर जाकर कंकाल निर्माण में सहभागी हो सकें। चूंकि प्रवाल का निर्माण अत्यन्त धीमी गति से होता है फलतः समुद्री खरपतवार, समुद्री जीवों के अवशेष, उनके आवरणों के टुकड़े और मिट्टी इन प्रवालों के बीच जमते रहते हैं। प्रवालों पर उगी काई व शैवाल की परत भी प्रवाल ढांचों को जोड़ती हैं। कुछ शैवाल अपने तंतुओं को प्रवाल के कंकाल में फैलाकर बीच के स्थान को भरते हैं। प्रवालों में रंगों की जगमगाहट इन्ही शैवालों से उत्पन्न होती है यद्यपि समुद्री जल के अन्य लवण भी इस रंग-रंचना में सहयोगी हैं।

कहां होती हैं प्रवाल भित्तियां:—ऐसा नहीं है कि प्रवाल भित्तियां सारे समुद्री जगत में पाई जाती हों। प्रवाल भित्तियां ऊपरी व दक्षिणी ठंडे प्रदेशों के बजाए ऐसे समुद्रों में ज्यादा पाई जाती हैं जिनका जल गर्म होता है। भित्ति बनाने वाले प्रवालों को गर्म, स्वच्छ और उथले जल की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि ये महाद्वीपीय तटों पर 28 अंश उत्तरी और 28 अंश दक्षिणी अक्षांश के बीच पाई जाती हैं। भित्ति बनाने वाले प्रवाल विश्व के दो भागों में ही सीमित हैं। इनमें एक भाग कैरीबियन महासागर क्षेत्र और दूसरा भाग भारतीय एवं पश्चिमी प्रशान्त महासागर क्षेत्र । आस्ट्रेलिया के उत्तर पूर्व में भी प्रवाल भित्तियों का विस्तार है। प्रवाल भित्तियों का निर्माण विभिन्न प्रकार की प्रवाल जातियां मिलकर करती हैं। भारतीय प्रवाल भित्तियों में प्रवालों की लगभग 500 जातियां पाई जाती हैं।

प्रवाल भित्तियों का निर्माण व विकास उस स्थान पर अच्छा होता है जहां जल का तापमान वर्षभर 22 से 28 डिग्री सेल्सियस रहता है यही कारण है कि ज्यादा गहरे जल में भित्तियां नहीं बन पाती। प्रवाल भित्तियां जल की 50 से 70 मीटर तक की गहराई वाले प्रकाशीय क्षेत्र तक में ही पाई जाती हैं। इनके विकास में जल की लवणीयता भी 32 से 35 प्रतिशत के बीच अच्छी मानी गई है। भित्तियों के क्षेत्र में सामान्य लवणता वाले जल में भी कैल्सियम कार्बोनेट की मात्रा अधिक होती है। एक ही जगह स्थिर रहने वाले पोलिपों को आहार व आक्सीजन के लिए जल पर ही निर्भर रहना पड़ता है, अतः तेज लहरों से प्रवाल की वृद्धि को सहारा मिलता है क्योंकि इससे ताजा आक्सीजन युक्त जल और प्लावकी भोज्य पदार्थों की उपलब्धि होती है।

कितने प्रकार की हैं प्रवाल भित्तियां :—प्रवाल भित्तियां मूलरूप से तीन प्रकार की होती हैं—1. तटीय या झालरदार 2. अवरोधक 3. एटॉल। तटीय प्रवाल भित्तियां प्रवालों की ऐसी संरचनाएं हैं जो समुद्र तल पर मुख्य भूमि के निकट किनारों पर स्थित होती हैं। ये मुख्यतया चट्टानों के टुकड़े, मृत प्रवालों और मिट्टी से बनती हैं। इनमें जीवित प्रवाल प्रायः बाहरी किनारों व ढलानों पर पाए जाते हैं। भित्तियों की ऊपरी सतह मृत प्रवालों से बनी होती है। ये भित्तियां उन स्थलों पर होती हैं जहां तापमान 20 डिग्री से. से ऊपर हो, लवणता 35 प्रतिशत और प्रकिलता न्यून हो। भारत में ये भित्तियां मन्नार की खाड़ी तथा अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह में पाई जाती हैं।

अवरोधक प्रवाल भित्तियां भी तटीय प्रवाल भित्तियों की तरह ही होती हैं परन्तु ये किनारे से दूर स्थित होती हैं और इनके तथा किनारे के बीच सैकड़ों किलोमीटर चौड़ा लैगून होता है। लैगून की चौड़ाई परिवर्तनशील होती है। लैगून की चौड़ाई कम होते जाने पर अन्ततः अवरोधक प्रवाल भित्ति भी तटीय प्रवाल भित्ति में रूपान्तरित हो जाती है। इन भित्तियों में प्रवालों की बढ़ोतरी बाहरी वृद्धि केन्द्रों पर प्रचुरता से होती है। संसार की सबसे बड़ी अवरोधक प्रवाल भित्ति आस्ट्रेलिया की ग्रेट बेरियर रीफ है। आस्ट्रेलिया के उत्तर पश्चिमी तट पर 2010 किलोमीटर तटीय लम्बाई पर फैली इन भित्तियों का क्षेत्रफल 260000 वर्ग किलोमीटर है। यहां प्रवालों की 400 जातियां तथा मछलियों की 1500 प्रजातियां हैं। ये भित्तियां भी 15000 वर्ष पुरानी मानी जाती हैं।

एटॉल एक ऐसा प्रवाल द्वीप होता है जो एक केंद्रीय लैगून के चारों ओर प्रवाल भित्तियों की एक पट्टी का बना होता है। इस प्रकार एटॉल ऐसी भित्तियां होती हैं जो उथले लैगूनों के किनारे किनारे होती हैं और उन्हें चारों तरफ से घेर लेती हैं।

उपयोगिता :—प्रवाल भित्तियां विश्व का दूसरा सबसे समृद्ध पारिस्थितिकी तंत्र है। यह अनेक जीव व वनस्पतियों

का आश्रय स्थल है। प्रवाल भित्तियां सजावटी मछली, मोलास्क जाति के जीव तथा इकाइनोडर्मेटा संघ के जीवों का आवास व आहार स्थल है। प्रवाल का प्रयोग मानव सदियों से रत्न के रूप में करता आया है। प्रवाल का प्रयोग औषधियों में भी होता रहा है। वर्तमान में भी इन्हें अर्णुदरोधी, दर्दरोधी व प्रदाहरोधी दवाओं में काम में लेने के साथ-साथ मधुमेह, बवासीर और मूत्ररोगों के उपचार में भी काम में लिया जाता है। प्रवाल भित्तियों को कई उपयोगी पदार्थ यथा छन्नक, फर्शी, पेंसिल, टाइल आदि बनाने में भी काम में लाया जाता है। श्रृंगार सामग्री में तो इनकी गुलाबी, बैंगनी व नारंगी रंग की कसीदाकारी बहुत ही काम आती है।

स्थिति :—कई वर्षों में केवल कुछ ही मिलीमीटर वृद्धि कर पाने वाली हमारी इन प्रवाल भित्तियों की वर्तमान स्थिति चिंताजनक है। भित्तियों का उत्खनन इनके निर्माण की तुलना में अत्यन्त तीव्र है। उत्खनन व प्रदूषण से इनका क्षरण चिंता का विषय है। अवैध व्यापार व मानवीय लालच से ये नष्ट होनी शुरू हो गई है। वायु-प्रदूषण व जल प्रदूषण के कारण धरती की गर्माहट से भी प्रवाल भित्तियों को खतरा शुरू हो गया है। यदि इनकी नष्ट होने की वर्तमान दर जारी रही तो अगले 30 वर्षों में हम लगभग 60 प्रतिशत प्रवाल भित्तियों से महरूम हो जाएंगे। प्राकृतिक रूप में विरंजन क्रिया से इनके नष्ट होने की तुलना में मानवीय लापरवाही से इनको ज्यादा खतरा है। हमें चाहिए कि इस विशाल व समृद्ध विरासत को बनाए रखने के लिए अभी से सचेत हो जाएं।

❑❑

मु. जेठूवास, पो० दातरू लक्ष्मणगढ़, जिला सीकर (राजस्थान)

आयुर्वेद और योग से तनाव-मुक्ति

—डॉ०(श्रीमती) सुरिन्दर कटोच

कोई भी बाहरी घटना अथवा आंतरिक प्रेरणा जिससे संतुलन भंग होने का डर रहता है 'तनाव' कहलाती है।

तनाव के कारण :

तनाव के सामान्य कारण निम्नलिखित हैं :

लापरवाही, अहम्, असन्तुलित पसन्द-नापसन्द, जीवन के प्रति मोह और अज्ञान ये सभी प्रज्ञा अपराध से उत्पन्न होते हैं। (प्रज्ञा अपराध से अभिप्राय असंतुलित बुद्धि, ग्राह्य क्षमता और स्मृति से है)।

तनाव तब होता है, जब :—

— आपसे आपकी सामर्थ्य/क्षमता से अधिक कार्य की अपेक्षा की जाती है।

— आप अपनी सहिष्णुता की सीमा से आगे जाते हैं।

— आपके पास अपने परिवार/कार्य की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं होते हैं।

— आपके पास अपना कार्य करने/पारिवारिक स्थितियों से निपटने के लिए पर्याप्त ऊर्जा नहीं होती।

— आपको भौतिक और भावनात्मक समर्थन प्राप्त नहीं होता।

— आप दबाव के प्रति अति संवेदनशील होते हैं।

— आप अपने उद्देश्यों को पूरा नहीं कर पाते हैं।

तनाव के दुष्प्रभाव :—

मानव के पास बहुत अच्छी स्मरण शक्ति होती है और वह भविष्य के लिए बहुत दूर की योजनाएं तैयार कर सकता है। परिणामस्वरूप यह तनाव दीर्घकालिक या पुराना हो जाता है। वर्षों पहले क्या घटित हुआ था अथवा आने वाले वर्षों में हमारे साथ क्या घटित हो सकता है इसी चिन्ता से मनुष्य तनाव झेलता है। लंबी अवधि तक रहे तनाव से विभिन्न तंत्रों का सामञ्जस्य विस्थापित होने से उच्च रक्त चाप, हृदयों की बीमारियों, मधुमेह, पेप्टिक अलसर, अम्लपित्त, केंसर, एलर्जी और स्व व्याधिक्षमताविकृतिजन्य रोगों का खतरा बढ़ जाता है। तनाव को प्रत्यावर्तित करके इन स्थितियों को सही दिशा में ले जाया जा सकता है। अर्थात् सकारात्मक भावनाएं तनाव को समाप्त कर सकती हैं, सकारात्मक विचार न केवल रोगों से संरक्षित करते हैं बल्कि रोगों का उपचार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

तनाव के लक्षण :—

तनाव के शारीरिक लक्षण इस प्रकार होते हैं :

— निद्रा चक्र में बदलाव। उदाहरण के लिए निद्रा आने और निद्रा से जागने में असुविधा होना, अपर्याप्त निद्रा, अप्रगाढ़ निद्रा

— थकान

— आलस्य

— सांस लेने में तकलीफ

— बार-बार चक्कर आना

— अपच

— सीने में जलन

— उल्टी की शिकायत

— आंतों की असम्यक गति के फलस्वरूप अतिसार कब्ज

— सिर दर्द

— मांसपेशियों में जकड़ाहट होने से कमरदर्द, गर्दन में दर्द

— नसों में खिंचाव

— भूख का अधिक या कम लगना

— आदतों में परिवर्तन

— सिगरेट/शराब आदि व्यसनों के प्रति आसक्ति।

मानसिक लक्षण :—

— खीज और बात-बात पर लड़ने लगना (चिड़चिड़ापन)

— अकारण चिंता करना या डर लगना

— निर्णय क्षमता में कमी

— सदैव कुछ न कुछ सोचते रहना

— प्राथमिकता तय न कर पाना

— सामंजस्य स्थापित न कर पाना

— मनोदशा (मूड) में बदलाव/उतार-चढ़ाव

— विचारों में अस्थिरता

— स्मृति का क्षीण होते जाना

— असफलता की भावना

— अपने को महत्वहीन समझना/हीन भावना से ग्रस्त होना

— समाज से कटे-कटे रहना/सामाजिक कार्यकलापों से अपने को दूर रखना।

तनाव-मुक्ति के उपाय :

आयुर्वेद के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की पृथक सत्ता है तथा उसके शरीर और मन की प्रकृति भिन्न होती है। किसी रोग का उपचार आरंभ करने या रोग निवारण और स्वास्थ्य रक्षा से संबंधित मार्गदर्शी सिद्धांत बताते समय शरीर और मन की प्रकृति का विश्लेषण करना अनिवार्य होता है ताकि प्रकृति के अनुसार दिनचर्या, ऋतुचर्या, आहार-विहार, आचार और विचार से सम्बन्धित परामर्श रोगी को दिया जा सके।

तनाव को कम करने के दस नियम :

1. प्रकृति विश्लेषण अर्थात् शारीरिक और मानसिक संगठन का ज्ञान
2. प्रकृति के अनुसार भोजन
3. प्रकृति के अनुसार जीवनशैली
4. मौसम के अनुसार सावधानियां बरतना
5. मानसिक परामर्श सत्र (मनोवैज्ञानिक वार्तालाप)
6. पूरे शरीर की मालिश
7. शिरोधारा
8. रसायन चिकित्सा, विशेषतया मेध्य रसायनों का प्रयोग
9. आवश्यकता के अनुसार औषधि सेवन
10. मन और शरीर को शान्त व शिथिल छोड़कर आराम देने की तकनीकों का प्रयोग विशेषतया योग उपक्रमों का अनुशीलन।

इन सभी दसों का नियमों पालन एक साथ नहीं करना होता है। रोग की दशा व रोगी की दिनचर्या आदि के अनुसार उपचार व्यवस्था की जाती है। सावधानियों के संबंध में डाक्टर से परामर्श करना आवश्यक है, परन्तु पहले चार नियमों का पालन स्वास्थ्य संवर्धन का मूलमंत्र है, जो आयुर्वेद की मौलिक अवधारणा है।

❑❑

आयुर्वेद चिकित्सक एवं आहार सलाहकार, फ्लैट नं० 4, सी जी एच एस डिस्पेंसरी, मोती बाग-I, नई दिल्ली

आध्यात्मिक कामधेनु है गीता

गीता का प्रत्येक श्लोक मन्त्रवत् है। दुर्गासप्तशती की तरह श्रीमद्भगवद्गीता भी आध्यात्मिक सप्तशती है। पुराणों के अनुसार आज रविवार को मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि को गीता जयन्ती है। आइए इस पावन पर्व पर गीता के गोपनीय मंत्र-विज्ञान को जानें, जिसमें हमारी समस्त समस्याओं के समाधान की आध्यात्मिक कुंजी छुपी है।

—डा. अतुल टण्डन

श्रीमद्भगवद्गीता साक्षात् भगवान की वाणी होने के कारण भक्तों के लिये वांछाकल्पतरु है। यह सर्वशास्त्रमयी और सर्वार्ध-साधिका है। आध्यात्मिक जगत की यह कामधेनु अपने पाठक की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली है। इसका प्रत्येक श्लोक मंत्र है। श्रद्धा तथा विधिपूर्वक गीता का अनुष्ठान किये जाने पर अभीष्ट फल प्राप्त होता है।

शास्त्रों की उत्पत्ति वेदों से हुई, वेदों का प्राकट्य ब्रह्माजी के मुख से हुआ, लेकिन वे स्वयं भगवान की नाभि कमल से उत्पन्न हुये। इस प्रकार शास्त्रों और भगवान के बीच कुछ दूरी होने से थोड़ा व्यवधान पड़ गया। परन्तु गीता तो साक्षात् श्रीहरि का वचनामृत है। अतएव इसे सभी शास्त्रों से बढ़ कर कहा जाए, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। श्री वेदव्यास ने महाभारत के भीष्मपर्व में कहा है—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः। या स्वयं पद्मनाभस्यं मुखपद्माद्विनिः सुता॥ (महाभारत-भीष्मपर्व 44-1)

गीता का भली प्रकार से गान करना चाहिए, फिर शास्त्रों के विस्तार की क्या आवश्यकता है ? यहां गीता स्वयं पद्मनाभ (श्रीहरि) के मुखारविन्द से निकली है।

वाराहपुराण में भगवान का अपना कथन है—

गीताश्रेयऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम्।
गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रींल्लोकान् पालयाम्यहम्॥

मैं गीता के आश्रय में रहता हूं,गीता मेरा श्रेष्ठ गृह है। गीता के ज्ञान का सहारा लेकर ही मैं तीनों लोकों का पालन करता हूं।

गीता भगवान का प्रधान रहस्यमय आदेश है। इसका पालन करने वाला जन्म-जन्मातरों के आवागमन से मुक्त हो जाता है। ऋषि-मुनियों का अभिमत है कि गीता भगवान का श्वास है, हृदय है और भगवान की वाङ्मयी मूर्ति है। गीता ज्ञान का अथाह समुद्र है, इसके अंदर संसार की सभी समस्याओं का समाधान भी छुपा है। समय-समय पर अनेक विद्वानों ने गीता पर अनेक टीकाएं लिखी हैं। परन्तु उनमें अधिकांशतः गीता के दार्शनिक स्वरूप की ही व्याख्या की गयी है। जबकि मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि दुर्गासप्तशती की तरह गीता के सात सौ श्लोकों में भी मन्त्र शक्ति निहित है।

इस आध्यात्मिक सप्तशती के सविधि प्रयोग से मनोवांछित फल प्राप्त होता है। जो लोग गीता में श्रद्धा रखते हैं, उनकी सांसारिक समस्याओं का निस्तारण इस गीतारूपी मन्त्र महोदधि से ही हो सकता है। वैसे तो गीता के सभी श्लोक मन्त्र हैं और विभिन्न लौकिक तथा पारमार्थिक मनोरथों के लिये उनका यथाविधि अनुष्ठान किया जा सकता है, परन्तु इस मंत्र महार्णव का चौथा, नवां, ग्यारहवां, बारहवां, तेरहवां और पन्द्रहवां अध्याय मेरी दृष्टि में विशेष महत्वपूर्ण है।

सृष्टि स्थिति संहार क्रम

गीता का अनुष्ठान सृष्टि-स्थिति-संहार, तीनों क्रम में किया जा सकता है। प्रत्येक क्रम के पाठ का एक विशिष्ट ढंग है और तद्नुसार उसका फल भी विशेष है। चालीस दिनों तक प्रतिदिन संहार क्रम से तीन पाठ करने से बड़े से बड़ा संकट दूर होता है, शत्रु का नाश होता है तथा निर्दोष बंधन से मुक्त हो जाता है। संहार क्रम में 18वें अध्याय से आरम्भ कर के पहले अध्याय तक क्रमशः उलटे क्रम से पाठ किया जाता है। धन की कामना से दरिद्रता निवारण हेतु गीता का अनुष्ठान स्थिति क्रम में करना चाहिए। इस क्रम में छठे अध्याय से शुरू कर के अठाहरवें अध्याय तक, फिर पंचम अध्याय से पहले अध्याय तक पाठ किया जाता है। चालीस दिनों तक प्रतिदिन तीन बार गीता का स्थिति क्रम से पाठ करते हुए अनुष्ठान करने से आर्थिक कष्ट दूर होता है तथा वित्तीय स्थिति में सुधार होता है। विवाह अथवा संतान की कामना से सृष्टि क्रम में गीता का अनुष्ठान करें। इसमें प्रथम से प्रारम्भ करके अठाहरवें अध्याय पर पाठ का समापन किया जाता है। इससे छहः माह में विवाह तथा वर्ष भर में संतान की प्राप्ति होती है। कुछ विद्वानों के मत से संन्यासियों

के लिए संहार क्रम, गृहस्थों के लिए स्थिति क्रम तथा ब्रह्मचारियों के लिये सृष्टि क्रम श्रेष्ठ है। इन वर्गों को अपनी स्थिति के अनुरूप पाठ करना विशेष फलदायक रहता है।

स्वप्नादेश और दिव्य दृष्टि

गीता के दूसरे अध्याय के सातवें श्लोक *कार्पण्यादोषोपहतस्वभाव:* को देवशयनी एकादशी से आरम्भ कर देवोत्थानी एकादशी तक प्रत्येक एकादशी को रात्रि के समय सव अवस्था में, पवित्र शय्या पर बैठकर पार्थसारथि श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए तथा अर्जुन की तरह भगवान से कातर प्रार्थना करते हुए 108 बार पढ़ें। अनुष्ठान काल में एकादशी व्रत तथा वैष्णव दिनचर्या का निष्ठापूर्वक पालन करें। इससे किसी एकादशी को मन में आपको भगवान का यथायोग्य आदेश प्राप्त हो जायेगा। जीवन में कोई ऐसा विकट प्रश्न उपस्थित हो जाये कि उसका सही उत्तर ढूंढने में असमर्थता का अनुभव करें, तो उपर्युक्त श्लोक का विधिवत अनुष्ठान करने से स्वप्न में प्रभु की कृपा से आपको उसका समुचित समाधान अवश्य प्राप्त होगा। साधना से पूर्व उक्त श्लोक का 21 दिनों में 51 हजार जप करके सविधि पुरश्चरण अवश्य कर लें। तभी स्वप्नादेश मिलेगा।

गीता के सर्वप्रथम श्लोक- *धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे* का 21 दिन तक पार्थसारथि का ध्यान करते हुए 25 हजार जप का अनुष्ठान पूर्ण करने से अन्त:करण शुद्ध होता है तथा भविष्य दर्शन की दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। लेकिन इसके साथ स्वर विज्ञान का निरन्तर अभ्यास नितान्त अनिवार्य है।

प्रेतबाधा-निवारण

गीता के ग्यारहवें अध्याय का 36वां श्लोक- *स्थाने हृषीकेश तव प्रकीत्या* प्रेतबाधा का नाश करने में समर्थ है। 41 दिनों में इस श्लोक के सवा लाख जप का अनुष्ठान पूरा करने पर यह मंत्र सिद्ध हो जायेगा। तदोपरान्त आवश्यकता पड़ने पर इसके द्वारा अभिमंत्रित जल अथवा विभूति को देने से पीड़ित व्यक्ति बाधा से मुक्त हो जाता है। जिस स्थान पर भूत-प्रेत का उपद्रव हो, वहां गीता के प्रत्येक श्लोक के आदि-अंत में इसका सम्पुट लगाकर 51 दिनों तक नित्य पाठ करने से प्रेतात्मा उस स्थान को छोड़कर चली जाती है। गीता के ग्यारहवें अध्याय के 39वें श्लोक- *वायुर्यमो* में भी प्रेतबाधा के निवारण की अद्‌भुत क्षमता है। परन्तु उसका 15 दिनों में 51 हजार जप होता है। गीता के पाठ से पिशाच योनि में भटक रही जीवात्मा की सद्‌गति होती है। अकाल मृत्यु से मृतक के निमित्त उसके परिवार के सदस्यों का गीता पाठ उसके चित्र के सम्मुख नियमपूर्वक करना चाहिये। गायत्री मंत्र तथा गंगाजल की तरह गीता का प्रत्येक श्लोक परम पवित्र तथा दिव्य ऊर्जा सम्पन्न है।

ऋण मोचन तथा अर्थोन्नति

गीता के दसवें अध्याय के सोलहवें श्लोक- *वक्तुमर्हस्यशेषेण* का 31 दिनों में 36 हजार जप पूर्ण करने पर भगवात्कृपा से लक्ष्मी प्राप्त होती है। बारहवें अध्याय के सातवें श्लोक- *तेषामहंसमुद्धर्ता* का पचास दिनों में डेढ़ लाख जप करने से तथा इसी श्लोक का सम्पुट लगा कर गीता का सौ बार पाठ करने से ऋण मोचन होता है। गीता के ग्यारहवें अध्याय के 42वें श्लोक- *यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽ* सि. का सम्पुट लगाकर गीता के सौ पाठ करने से आर्थिक स्थिति में सुधार होता है। इस श्लोक का स्वतन्त्र रूप से अनुष्ठान करने से अर्थोन्नति अवश्य होती है।

शरणागति एवं पाप-क्षय

गीता के अठारवें अध्याय के 66वें श्लोक- *सर्वधमान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज* का पांच महीनों में पांच लाख जप करने से बड़े से बड़ा पातक नष्ट हो जाता है तथा संचित पापकर्मों के कुफल का शमन होता है। इस श्लोक का सम्पुट लगाकर गीता के 151 पाठ करने से समस्त कार्य सिद्ध होते हैं। इस श्लोक का अनुष्ठान करने पर श्रीहरि की भक्ति और शरणागति मिलती है।

विजय और ऐश्वर्य

गीता के अंतिम श्लोक- *यत्र योगेश्वर: कृष्णो* का 50 दिनों में डेढ़ लाख जप तथा इस श्लोक से सम्पुटित गीता का 51 बार पाठ करने से वाद-विवाद में विजय प्राप्त होती है तथा शत्रु पराजित होता है। इस श्लोक का विधिवत अनुष्ठान ऐश्वर्य बढ़ाते हुए श्री प्रदान करता है। इस श्लोक में सम्पूर्ण गीता का सार समाविष्ट है। इसके साधक को पुरुषार्थ चतुष्टय-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सहज ही सुलभ हो जाता है। इस महामंत्र के प्रताप से भक्त अपराजित होकर जीवन में पूर्ण सफलता प्राप्त करता है। यह श्लोक सर्वांगीण उन्नति देता है।

पुरश्चरण विधि

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के श्लोकों का मन्त्रानुष्ठान करने वाले साधक को कुल जप संख्या के दशांश का हवन, हवन का दशांश तर्पण का दशांश मार्जन और उसकी दशांश संख्या में अथवा अपनी शक्ति के अनुसार आचार्यों को भोजन कराना चाहिए। मंत्र सिद्धि के लिए तन्त्रशास्त्र में वर्णित पुरश्चरण सिद्धान्त के सूत्रों का पालन करें तथा अनुष्ठान काल में नियम-संयम का पालन अवश्य करें। ❑❑

हिंदुस्तान (15 दिसम्बर, 2002) से साभार

रमानाथ अवस्थी नहीं रहे

हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध गीतकार श्री रमानाथ अवस्थी का 29 जून को दिल्ली में निधन हो गया, वे अठहत्तर वर्ष के थे। उनका जन्म 8 नवंबर, 1924 को उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जनपद के गांव लालीपुर में हुआ था।

हम यहां उनका एक गीत प्रकाशित कर रहे हैं

I - आखिरी शयन

रोशनी के घेरों में
या किन्हीं अंधेरों में
तुम भी डूब जाओगे
मैं भी डूब जाऊंगा
तुम मुझे न पाओगे
मैं तुम्हें न पाऊंगा
एक दिन यही होगा।
जाम ठल रहा है
जो प्यार चल रहा है
जो सिर्फ चार दिन का है
फिर कहीं अकेले में
धूल हुए मेले में
तुम मुझे पुकारोगे
मैं तुम्हें पुकारूंगा
तुम मुझे न पाओगे
मैं तुम्हें न पाऊंगा
एक दिन यही होगा।
उस महल में पैसा है
बोलो मत कि कैसा है ?
कोई कत्ल कर देगा
मौत की खबर का गम
आंसुओं भरा सरगम
तुम कहीं सुनाओगे
मैं कहीं सुनाऊंगा
तुम मुझे न पाओगे
मैं तुम्हें न पाऊंगा
एक दिन यही होगा।

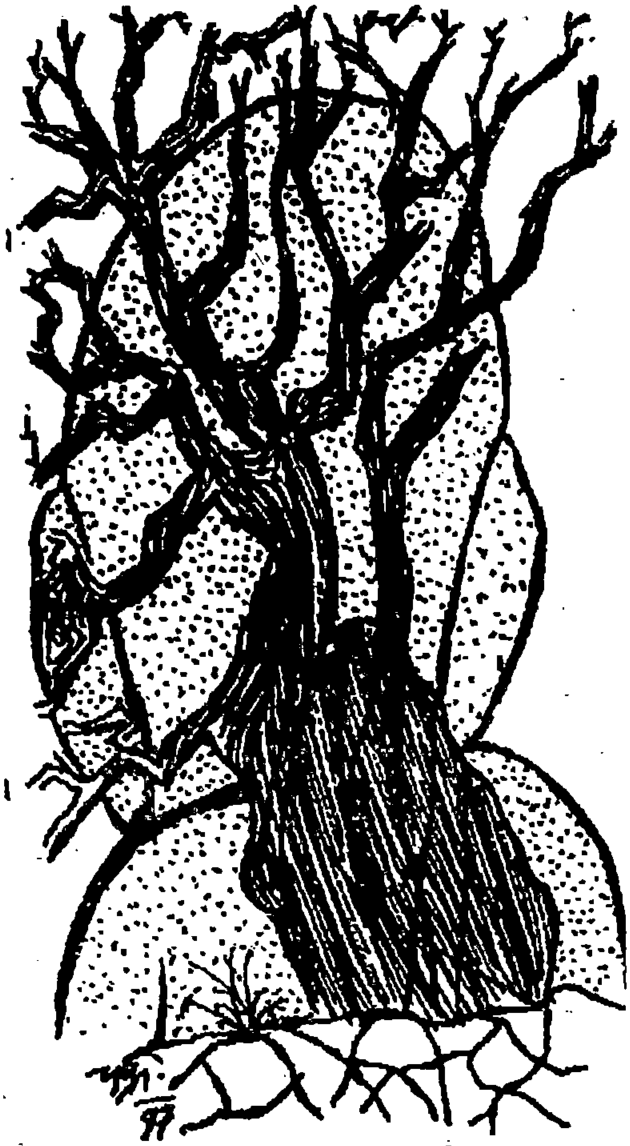

(स्व.) रमानाथ अवस्थी

जो भी इस सदी में है
खून की नदी में हैं
रात-दिन जो बहती है
खून हुई लहरों से
बस्तियों और शहरों से
तुम मुझे बुलाओगे
मैं तुम्हें बुलाऊंगा
तुम मुझे न पाओगे
मैं तुम्हें न पाऊंगा
एक दिन यही होगा।
मुश्किलों में है मंजिल
बैठे हुए हैं कातिल
धर्म की इमारत में
अग्नि की शिखा थामे
आरती की वेला में
तुम मुझे जलाओगे
मैं तुम्हें जलाऊंगा
तुम मुझे न पाओगे
मैं तुम्हें न पाऊंगा
एक दिन यही होगा।
कोई कुछ न बोलेगा
कोई थोड़ा रो लेगा
आग पर बदन होगा
आखिरी शयन होगा
तुम मुझे निहारोगे
मैं तुम्हें निहारूंगा
तुम मुझे न पाओगे
मैं तुम्हें न पाऊंगा
एक दिन यही होगा।

दि न्यू इंडिया एश्योरेन्स कंपनी लि. मुंबई क्षेत्रीय कार्यालय की गृह पत्रिका 'सरगम' के जुलाई 2002 अंक से साभार

कुछ तो फर्ज निभा लो

—श्रीमती विनोद कुमारी पांडे

टाइगर हिल के कंधों पर, प्रणव युद्ध छिड़ते देखा
नभ-चुंबी हिमगिरी में हमने गरज-गरज भिड़ते देखा।

देख रहे थे स्वयं ही नभ में सूरज चांद सितारे भी
द्रास बटालिक टाइगर हिल के वीर हमारे तारे भी।

जाग रहे हैं सीना ताने, जागरूक प्रहरी
सोते हैं हम चादर ताने देहाती व शहरी।

छक्के छुड़ा रहे रिपु दल के सेना पर सैनिक
अपने खाते में उलझे हम, मासिक व दैनिक

घात लगाए दुश्मन बैठा, हर अंधियारे में,
मस्ती में हम डूब रहे, अपने गलियारे में,

आग लगा देगा जब दुश्मन, घर में छुपके,
नीड़ नष्ट होता देखेंगे, सहमे दुबके से।

देश होगा तो हम होंगे, क्या तुम भूल गए
भव्य भवन में बुनते रहते सपने नए-नए।

कुछ तो कर्ज चुका लो मित्रो भारत माता का,
कुछ तो फर्ज निभा लो अपना भू से नाता का

सावधान हमको रहना है, हर छड़ दुश्मन के चालों से
कर दो तुम नाकाम इरादे, प्रखर प्रभावी भालों से,

गद्दारों का नाम मिटा है सदा स्वर्ण इतिहासों से,
देश बना करता है मित्रो, सदा सजग ठोस इतिहासों से।

वन्दन कर लो उस सैनिक का, जिसने विजय दिलाई
धन्य-धन्य वे शूर वीर जिनसे पाक ने मुंह की खाई।

पूजन कर लो उस शहीद का जिसने शीश चढ़ाया
धन्य सैन्य बल अखिल विश्व में, जिसने भारत का मान बढ़ाया।

केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान (राजभाषा विभाग) नई दिल्ली-110003।

तीन कविताएं

—राजकुमार कुम्मोज

उसका भय उसे शक्ति नहीं देता है

मित्र नहीं है कोई मेरा
तो शत्रु भी नहीं है कोई कहीं
वह मित्र जो जलेबियां खिलाता है
बदले में गुलाब जामुन खा जाता है
और दिक़्क़त यही नहीं है सिर्फ
कि वह इधर खाता है और उधर थूक क्यों देता है?
और दिक़्क़त यह भी नहीं है सिर्फ
कि वह इधर पीता है और उधर कै क्यों कर देता है?
दिक्क्त दरअसल यही है साहब
कि वह मीडिया का आदमी है
और मीडिया के समाने जाने से डरता है
दिक़्क़त दरअसल यही है जनाब
कि वह पुलिस का आदमी है
और पुलिस के समाने जाने से डरता है
दिक़्क़त दरअसल और सचमुच यही है श्रीमान्
कि वह नाटक का आदमी है
और नाटक के दृश्य में जाने से डरता है
कवि ने कहा भी है
कि उसका भय उसे शक्ति नहीं देता है
बल्कि देता है एक भयग्रस्त समाज
जिसकी गर्दनों, सीनों और बाजूओं पर
तनी रहती हैं बंदूकें सदा,

मगर सोचत नहीं हैं तब भी सोचने वाले

अभी हैं,
अभी नहीं रहेंगे
और हो जाएंगे, थे
कुछ कहेंगे, अच्छे थे
कहेंगे कुछ, सब बक़वास
सोचना होगा तब
कि किसे ठुकराएं? अपनाएं किसे?
मगर सोचते नहीं हैं तब भी सोचने वाले
तो क्या कीजिए?

बहुत दूर नहीं थी अपनी पकड़ से यह दुनिया

बहुत दूर नहीं थी
अपनी पकड़ से यह दुनिया
सिर्फ एक मुट्ठी नहीं थी
कसी हुई।
कसी हुई मुट्ठी होती
तो, अकेला नहीं होता दु:ख
अकेले ही नहीं रोता झरना
अकेले ही नहीं बहती नदी
अकेली नहीं होती स्त्री
हम भी नहीं होते
इतने अकेले।
हमने कब कसी रस्सी?
हमने कब कसी रस्सी पर ज़िंदगी?
हमने कब कसी ज़िंदगी पर कविता?
हमने कब कसी कविता पर भाषा?
हमने कब कसी भाषा पर तलवार?
हमने कब कसी तलवार पर धार?
और धार पर खुद को कब कसा?
तो अब क्या करें?
सोचिए-सोचिए कि जीएं या मरें?
जीएं तो जीएं किधर, किस गली ?
और मरें तो मरें आखिर किस जंगल?
सोचिए-सोचिए कि जाएं या आएं
जाएं तो जाएं किधर, किस गली?
और आएं तों कहां, किसलिए?
बहुत दूर नहीं थी
अपनी पकड़ से यह दुनिया
सिर्फ एक सुशोमन-पत्थर नहीं था
हाथों में।

संपर्क 331 जवाहरमार्ग, इन्दौर-452002।

स्याह करता जा रहा है

कृष्ण चंद श्रीवास्तव

स्याह करता जा रहा है
हर उजाले को अंधेरा
शीत-सन्ध्या
देवकन्या मेनका सी
है उतरती आ रही
पश्चिम क्षितिज से
इस द्विआभा में कलुष को कलुष भी कहना कलुष है।
विनतसिर, सहमे हुए ये पेड़,
ये गुमसुम हवाएं;
दूर पेड़ों बीच दिखते,
मेघ के काले चकत्ते,
तरु शिखर पर
मौन मुखरित
खग कुलों के
मौन प्रेक्षक
उस उजाले के मरण के।
है घिरा ''संस्पेंस'' चारों ओर
इंगितों से हो रही है बात
हर नयन यूं खुला ज्यों स्तब्ध
पूछता है हो गई क्या बात
कौन उत्तर दे
सभी हैं चित्र लेखे।
हर उजाले को अंधेरा
स्याह करता जा रहा है।
ओठ मानो सिल गए हैं
या पड़े हैं बन्द ताले, हर जुबां पर
जो सदा वाग्भी रही है।
बन्द पट वातायनों के
और अभ्यन्तर
उमड़ती
धूम्र की वह राशि
लिख रही आलेख
काले अक्षरों से
उस मरण की
उस घुटन की उस कुढ़न की
या बनाती चित्र
काले श्वेत
नियति के परिवर्तनों की
घिर गया काला अंधेरा
छा गया स्तब्धता सा मौन।

एच-2, एंड्रयूजगंज एक्सटेंशन, नई दिल्ली।

राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी गतिविधियां

आदेश-अनुदेश

राजभाषा हिंदी में अच्छा कार्य करने वाले अधिकारियों की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों में उनके सराहनीय कार्य करने के संबंध में भारत सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागों के सचिवों को संबोधित सचिव, राजभाषा विभाग द्वारा 11-11-2002 का अ. शा. पत्र सं. 1/14013/03/94-रा. भा.-नी.-1 भेजा गया है। इस पत्र की प्रति तथा माननीय प्रधानमंत्री जी द्वारा मंत्रिमण्डल के सभी सदस्यों को भेजे गए दिनांक 23 दिसंबर, 2000 की एक प्रति सूचनार्थ नीचे दी जा रही है:—

सत्यमेव जयते

आ.शा. पत्र सं. 1/14013/03/94-रा.भा. (नीति-1)

एस. के. टुटेजा

सचिव
SECRETARY
TEL :
4631573

भारत सरकार
GOVERNMENT OF INDIA
राजभाषा विभाग
DEPARTMENT OF OFFICIAL LANGUAGE
गृह मंत्रालय
MINISTRY OF HOME AFFAIRS
लोक नायक भवन, खान मार्किट
LOK NAYAK BHAVAN, KHAN MARKET
नई दिल्ली-110003
NEW DELHI-110003

दिनांक 8-11 नवम्बर, 2002

प्रिय श्री,

मैं आपका ध्यान माननीय प्रधान मंत्री जी के अपने मंत्रिमंडल सहयोगियों को सम्बोधित दिनांक 23-12-2000 के पत्र (सुलभ संदर्भ के लिए प्रति संलग्न) की ओर आकृष्ट करना चाहूंगा जिसमें राजभाषा हिंदी में अच्छा कार्य करने वाले अधिकारियों की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों में उनके सराहनीय कार्य का उल्लेख किए जाने का निदेश है। इसके अनुपालन में केन्द्र सरकार के सभी 'क', 'ख', तथा 'ग' श्रेणी के अधिकारियों/कर्मचारियों (अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों सहित) द्वारा राजभाषा हिंदी में किए गए सराहनीय कार्य का उल्लेख उनके वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट के **'पत्र व्यवहार में कुशलता (Communication Skill)'** संबंधी कॉलम में किया जाए।

2. अनुरोध है कि इसके अनुसार अपने मंत्रालय/विभाग तथा सम्बद्ध/अधीनस्थ कार्यालयों में कार्रवाई सुनिश्चित करवाएं।

सादर,

आपका,
(एस. के. टुटेजा)

प्रधान मंत्री

नई दिल्ली

23 दिसम्बर, 2000

प्रिय . . . .

केन्द्रीय हिंदी समिति, जो संघ की राजभाषा हिंदी के प्रसार तथा हिंदी भाषा के समग्र विकास के लिए सुझाव देने वाली सर्वोच्च समिति है, की दिनांक 22-09-2000 को हुई बैठक में राजभाषा हिंदी के सरकारी कामकाज में प्रयोग की वर्तमान स्थिति की समीक्षा की गई। इस बात पर चिंता व्यक्त की गई कि संविधान में संघ की राजभाषा हिंदी संबंधी प्रावधानों के बारे में हमारे अधिकारियों/कर्मचारियों द्वारा उठाए गए कदमों में बहुत कमियां हैं। आवश्यक है कि सरकारी कामकाज में हिंदी के उत्तरोत्तर प्रयोग को सुनिश्चित करने के लिए ठोस कदम उठाए जाएं। जहां कहीं भी संभव हो, वहां हिंदी में कार्य कर अन्यों को भी इस दिशा में प्रोत्साहित करने का प्रयास करना चाहिए।

2. इस संबंध में मैं चाहूंगा कि आप अपने मंत्रालय/संबद्ध एवं अधीनस्थ कार्यालयों में राजभाषा हिंदी में काम किए जाने का उपयुक्त वातावरण निर्माण करने के लिए निम्न कदम उठाएं :—

1. शीर्षस्थ प्रशासनिक बैठकों में तथा सचिवों की समिति की बैठकों में विचार-विमर्श और कार्यवाही हिंदी में करने को उत्तरोत्तर प्रोत्साहित किया जाए।

2. राजभाषा अधिनियम की धारा 3(3) का (जिसके तहत कुछ कागजात हिंदी और अंग्रेजी में साथ-साथ जारी किए जाने अनिवार्य हैं) तथा नियम 5 का (जिसके अंतर्गत हिंदी में प्राप्त पत्र का उत्तर हिंदी में दिया जाना अनिवार्य है) अनुपालन सुनिश्चित किया जाए। इन प्रावधानों की उपेक्षा करने वाले अधिकारियों को लिखित परामर्श दिया जाए कि वे भविष्य में इस प्रवृत्ति से बचें।

3. राजभाषा हिंदी में अच्छा कार्य करने वाले अधिकारियों की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों में उनके सराहनीय कार्य का उल्लेख किया जाए।

4. राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के अवसरों पर, जहां कहीं संभव हो, आप और आपके सहयोगीगण अपने भाषण हिंदी में दें। विदेशों में जाने वाले भारतीय प्रतिनिधि मंडलों के सदस्यों द्वारा हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग किया जाए। आवश्यकतानुसार भारतीय दूतावास के माध्यम से दुभाषी सेवाएं ली जा सकती हैं।

3. आशा है, आप अपने मंत्रालय तथा संबंधित कार्यालयों में हिंदी में कार्य करने के लिए उपर्युक्त बिन्दुओं पर विशेष ध्यान देंगे तथा समय-समय पर स्थिति की समीक्षा भी करते रहेंगे। कृपया आप अपने मंत्रालय/संबद्ध एवं अधीनस्थ कार्यालयों में राजभाषा हिंदी में कार्य करने के बारे में उपर्युक्त बिन्दुओं के संबंध में प्रगति से समय-समय पर मुझे भी अवगत कराते रहें।

शुभकामनाओं सहित,

आपका,
हस्ता./-
(अटल बिहारी वाजपेयी)

मंत्रिमंडल के सभी सदस्य

केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान (राजभाषा विभाग) के दिनांक 11-10-02 के परिपत्र सं. 19013/1/2002-के. हि.प्र. सं./4270/5270 की प्रति।

विषय : संघ सरकार के मंत्रालयों/विभागों तथा कार्यालयों, स्वायत्त निकायों, निगमों, उपक्रमों, बैंकों आदि के कर्मचारियों के लिए वर्ष 2003 में चलाए जाने वाले हिंदी टंकण और हिंदी आशुलिपि के पूर्णकालिक गहन प्रशिक्षण कार्यक्रम।

महोदय/महोदया,

जैसा कि आप जानते हैं, केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, भारत सरकार के मंत्रालयों, विभागों, कार्यालयों, स्वायत्त निकायों, उपक्रमों, निगमों, बैंकों आदि के कर्मचारियों के लिए अन्य पाठ्यक्रमों के साथ-साथ हिंदी टंकण और हिंदी आशुलिपि के पूर्णकालिक गहन प्रशिक्षण पाठयक्रम भी चलाता है। पूर्णकालिक गहन प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का उद्देश्य कर्मचारियों को यथाशीघ्र हिंदी टंकण और हिंदी आशुलिपि में कौशल प्रदान करना है, ताकि वे वर्तमान द्विभाषिकता की स्थिति में हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं के टंकण और आशुलिपि में दक्षता प्राप्त कर सकें। संसदीय राजभाषा समिति की सिफारिशों के अनुसार सभी सरकारी कार्यालयों में उनके अंग्रेजी टाइपिस्टों तथा अंग्रेजी आशुलिपिकों को हिंदी टंकण और हिंदी आशुलिपि का प्रशिक्षण निर्धारित समय सीमा के अंतर्गत दिया जाना है।

2. भारत सरकार के मंत्रालयों, विभागों, कार्यालयों, स्वायत्त निकायों, उपक्रमों, निगमों, बैंकों आदि से. अनुरोध है कि वे हिंदी टंकण और हिंदी आशुलिपि के पूर्णकालिक गहन प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में अपने ऐसे कर्मचारियों को नामित करने की कृपा करें, जिनकी सेवाएं द्विभाषिक टाइपिस्टों या आशुलिपिकों के रूप में लेनी तत्काल आवश्यक समझते हों।

3. कम्प्यूटरों पर प्रशिक्षण की मांग को ध्यान में रखते हुए दिल्ली, हैदराबाद, चेन्ने और कोलकाता स्थित गहन प्रशिक्षण केन्द्र पर हिंदी आशुलिपि के प्रशिक्षार्थियों को हिंदी आशुलिपि के साथ-साथ कम्प्यूटर पर शब्द संसाधन का भी प्रशिक्षण दिया जाएगा जिससे वे प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् अपने कार्यालयों में जाकर कम्प्यूटर पर भी कार्य कर सकें।

4. केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली के अधीन कोलकाता, मुम्बई, चेन्नै, बेंगलूर तथा हैदराबाद में पांच उप संस्थान हैं। उपर्युक्त हिंदी टंकण और हिंदी आशुलिपि के पूर्णकालिक प्रशिक्षण कार्यक्रम मुख्यालय, नई दिल्ली के अतिरिक्त उपर्युक्त पांचों उप संस्थानों में भी चलाए जाते हैं। इन प्रशिक्षण पाठयक्रमों का विस्तृत विवरण अनुलग्नक-1 में दिया गया है।

5. ये प्रशिक्षण पाठ्यक्रम पूर्णकालिक और नि:शुल्क हैं अर्थात् इनके लिए कोई शुल्क आदि भी नहीं लिया जाता है। इन पाठ्यक्रमों का पाठ्य विवरण और हिंदी शिक्षण योजना के अंतर्गत दिए जाने वाले प्रशिक्षण पाठ्यक्रम एक समान है परन्तु ये प्रशिक्षण पाठ्यक्रम पूर्णकालिक होने के कारण इनकी नियमित रूप से पूर्णकालिक कक्षाएं आयोजित की जाती हैं। इन गहन प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में प्रतिदिन प्रात : 9.30 बजे से सायं 6.00 बजे तक प्रशिक्षण केन्द्र पर प्रशिक्षार्थी प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

6. इन प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के अंत में प्रशिक्षार्थियों की परीक्षा हिंदी शिक्षण योजना के परीक्षा स्कंध द्वारा ली जाती है। सफल प्रशिक्षार्थियों को प्रमाण-पत्र दिए जाते हैं। केन्द्र सरकार के ऐसे कर्मचारी जो अधिक अंक प्राप्त करते हैं, वे गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग के दिनांक 12-7-1989 के कार्यालय ज्ञापन संख्या 12011/4/87-रा. भा. (घ) के अनुसार संबंधित नियमों के अधीन विहित शर्तें पूरी करने पर हिंदी टंकण में 97 प्रतिशत, 95 प्रतिशत और 90 प्रतिशत अंक प्राप्त करने पर तथा हिंदी आशुलिपि में 95 प्रतिशत, 92 प्रतिशत व 88 प्रतिशत अंक प्राप्त करने पर कर्मचारी क्रमश: रु. 600/-, रु. 400/- और रु. 200/- के प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुरस्कार के पात्र होंगे। इस राशि का भुगतान कर्मचारियों के कार्यालयों द्वारा वहन किया जाएगा।

7. राजभाषा विभाग के कार्यालय ज्ञापन संख्या 12014/2/76-रा.भा.(घ) दिनांक 2-9-1976 के अनुसार हिंदी आशुलिपि की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद विहित शर्तें पूरी करने पर हिंदीभाषी आशुलिपिक 12 महीने की अवधि के लिए एक वेतन वृद्धि के बराबर राशि का वैयक्तिक वेतन तथा अहिंदी भाषी आशुलिपिक (राजपत्रित तथा अराजपत्रित दोनों) दो वेतनवृद्धि के बराबर

वैयक्तिक वेतन पाने के पात्र होंगे। राजपत्रित आशुलिपिकों को 90 प्रतिशत या अधिक अंक लेकर हिंदी आशुलिपि की परीक्षा पास करने पर ही वैयक्तिक वेतन दिया जाएगा। इसी प्रकार हिंदी टंकण की परीक्षा पास करने पर अराजपत्रित कर्मचारी विहित शर्तें पूरी करने पर 12 महीने के लिए एक वेतन वृद्धि के बराबर वैयक्तिक वेतन पाने के पात्र हैं।

8. केन्द्र सरकार के **निगमों/निकायों/उपक्रमों तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों** आदि को प्रति कर्मचारी रु. 50/- की दर से परीक्षा शुल्क देना होगा। परीक्षा शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा दिया जाएगा जो कि **''उप निदेशक (परीक्षा), हिन्दी शिक्षण योजना'', नई दिल्ली** के नाम से देय होगा।

9. नई दिल्ली स्थित संस्थान के मुख्यालय में सीमित संख्या में प्रशिक्षार्थियों के ठहरने के लिए छात्रावास की व्यवस्था है, लेकिन नई दिल्ली से बाहर स्थित उप संस्थानों में छात्रावास की कोई व्यवस्था नहीं है। इसलिए वहां प्रशिक्षार्थियों को अपने ठहरने आदि की व्यवस्था स्वयं करनी होगी।

10. इन पाठ्यक्रमों की अर्हताएं निम्न प्रकार हैं :—

(क) हिंदी टंकण

1. सभी अवर श्रेणी लिपिकों एवं अंग्रेजी टंककों के लिए यह प्रशिक्षण अनिवार्य है।
2. उच्च श्रेणी लिपिकों, हिंदी सहायकों और हिंदी अनुवादकों को भी स्वैच्छिक आधार पर नामित किया जा सकता है।
3. **शैक्षिक योग्यता** : हिंदी के साथ मैट्रिक या उसके समकक्ष अन्य परीक्षा जैसे प्राज्ञ, आदि उत्तीर्ण हों। दिनांक 27-10-1988 के राजभाषा विभाग के कार्यालय ज्ञापन संख्या 14016/17/88-रा. भा. (घ) के अनुसार हिंदी टंकण के प्रशिक्षण के लिए उन सभी कर्मचारियों को जिनकी शैक्षिक योग्यता हिंदी के साथ मिडिल अथवा उसके समकक्ष परीक्षा जैसे प्रवीण, आदि उत्तीर्ण हों, को भी प्रवेश दिया जा सकेगा।

(ख) हिंदी आशुलिपि

1. सभी वर्ग के आशुलिपिकों, वैयक्तिक सहायकों, निजी सचिवों, आदि के लिए यह प्रशिक्षण अनिवार्य है।
2. कक्षाओं में स्थान उपलब्ध होने पर ऐसे अवर श्रेणी लिपिकों/टंककों को जिन्होंने हिंदी शिक्षण योजना की हिंदी टंकण परीक्षा उत्तीर्ण कर ली हो, संबंधित कार्यालय द्वारा यह प्रमाण-पत्र देने पर कि उनका यह प्रशिक्षण जनहित में है तथा प्रशिक्षण के बाद हिंदी आशुलिपि में प्रवीणता का उनसे कार्य लिया जाएगा, ऐसे कर्मचारियों को भी प्रवेश दिया जा सकता है।
3. शैक्षिक योग्यता : हिंदी के साथ मैट्रिक या उसके समकक्ष अन्य कोई परीक्षा जैसे प्राज्ञ, अदि उत्तीर्ण की हो।

11. केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान के कोलकाता, हैदराबाद, बेंगलूर, चेन्नै और मुम्बई स्थित उप संस्थानों के पते अनुलग्नक-II में दिए गए हैं।

12. आपसे अनुरोध है कि अपने कर्मचारियों के नाम **पाठ्यक्रम आरम्भ होने से कम से कम 15 दिन पहले** इस कार्यालय को तथा अपने क्षेत्र में स्थित उप संस्थान के प्रभारी सहायक निदेशक को भिजवा दें। **कृपया उन्हीं कर्मचारियों को नामित करें जिन्हें आपके द्वारा पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु निश्चित रूप से कार्यमुक्त किया जा सके।** पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने के बाद किसी भी कर्मचारी को सत्र के मध्य में वापस बुलाने की अनुमति नहीं दी जाएगी। किसी भी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में नामित कर्मचारी/कर्मचारियों को प्रशिक्षण आरम्भ होने के दिन संबंधित प्रशिक्षण केन्द्र के प्रभारी सहायक निदेशक को प्रात : 9.30 बजे रिपोर्ट करने के निदेश दें। **कृपया ध्यान रखें कि यदि आशुलिपि पाठ्यक्रम के लिए किसी अवर श्रेणी लिपिक को नामित किया जाता है तो संबंधित केन्द्र के सहायक निदेशक से उनके प्रवेश की पुष्टि प्राप्त होने पर ही उन्हें प्रशिक्षण के लिए भेजा जाए।**

13. **पाठ्यक्रम में प्रवेश ''प्रथम आओ, प्रथम पाओ'' के आधार पर दिया जाएगा।**

केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान
राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय

केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली और कोलकाता, चेन्नै, मुम्बई, बेंगलूर तथा हैदराबाद स्थित केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान के उप संस्थानों में दिनांक 10-1-2003 से 10-12-2003 तक आयोजित किए जाने वाले हिंदी टाइपलेखन और हिंदी आशुलिपि के पूर्णकालिक गहन प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विवरण।

केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली में आयोजित किए जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रम

I-हिंदी टाइपलेखन

क्र० सं०	प्रशिक्षण कार्यक्रम	प्रशिक्षण की अवधि	प्रशिक्षण की तिथियां	प्रशिक्षण केंद्र का पता
1	हिंदी टाइपलेखन	40 कार्य दिवस	10-1-2003 से 7-3-2003	केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान 2-ए, पृथ्वीराज रोड, नई दिल्ली-11 (जे० एंड के० हाऊस के सामने)
2	हिंदी टाइपलेखन	40 कार्य दिवस	10-3-2003 से 9-5-2003	
3	हिंदी टाइपलेखन	40 कार्य दिवस	26-5-2003 से 18-7-2003	
4	हिंदी टाइपलेखन	40 कार्य दिवस	18-8-2003 से 14-10-2003	
5	हिंदी टाइपलेखन	40 कार्य दिवस	15-10-2003 से 10-12-2003	

II-हिंदी आशुलिपि

1	हिंदी आशुलिपि	80 कार्य दिवस	10-1-2003 से 9-5-2003	केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान 2-ए, पृथ्वीराज रोड, नई दिल्ली-11 (जे० एंड के० हाऊस के सामने)
2	हिंदी आंशुलिपि	80 कार्य दिवस	18-8-2003 से 10-12-2003	

कोलकाता, हैदराबाद, चेन्नै तथा बेंगलूर में स्थित उप संस्थानों में आयोजित किए जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रम

I-हिंदी टाइपलेखन

क्र० सं०	प्रशिक्षण कार्यक्रम	प्रशिक्षण की अवधि	प्रशिक्षण की तिथियां	प्रशिक्षण केंद्र का स्थान
1	हिंदी टाइपलेखन	40 कार्य दिवस	10-1-2003 से 7-3-2003	केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान कोलकाता चेन्नै, बेंगलूर और हैदराबाद
2	हिंदी टाइपलेखन	40 कार्य दिवस	10-3-2003 से 9-5-2003	
3	हिंदी टाइपलेखन	40 कार्य दिवस	26-5-2003 से 18-7-2003	

II-हिंदी आशुलिपि

1	हिंदी आशुलिपि	80 कार्य दिवस	18-8-2003 से 10-12-2003	केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण उप संस्थान कोलकाता चेन्नै, बेंगलूर और हैदराबाद

मुम्बई स्थित उप संस्थान में आयोजित किए जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रम

I-हिंदी टाइपलेखन

क्र० सं०	प्रशिक्षण कार्यक्रम	प्रशिक्षण की अवधि	प्रशिक्षण की तिथियां	प्रशिक्षण केंद्र का पता
1	हिंदी टाइपलेखन	40 कार्य दिवस	26-5-2003 से 18-7-2003	के०हि०प्र० उप संस्थान, कॉमर्स हाऊस, तीसरी मंजिल, करीमभाय रोड, बेलार्ड एस्टेट मुम्बई-38

II-हिंदी आशुलिपि

1	हिंदी आशुलिपि	80 कार्य दिवस	10-1-2003 से 9-5-2003	के०हि०प्र० उप संस्थान,
2	हिंदी आशुलिपि	80 कार्य दिवस	18-8-2003 से 10-12-2003	मुम्बई

अनुलग्नक-II

उप संस्थानों के पते

1. केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण उप संस्थान,
राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय,
कामर्स हाऊस, तीसरी मंजिल, करीमभाय रोड, बेलार्ड एस्टेट, मुम्बई-38

2. केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण उप संस्थान,
राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय,
कमरा नं०-30, तीसरा तल, कौंसिल हाऊस स्ट्रीट,
कोलकाता-1

3. केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण उप संस्थान,
राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय,
द्वितीय तल, केन्द्रीय सदन, कोटि,
सुल्तान बाजार,
हैदराबाद-500 095

4. केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण उप संस्थान,
राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय,
बी-विंग, पांचवां तल, केन्द्रीय सदन,
17वाँ मेन रोड, दूसरा ब्लॉक, कोरमंगला,
बेंगलूर

5. केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण उप संस्थान,
राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय,
दूसरा तल, राजाजी भवन,
ई-3, सी ब्लॉक, बेसैण्ट नगर,
चेन्नै-90

केन्द्रीय हिंदी समिति की 26वीं बैठक

केन्द्रीय हिंदी समिति की 26वीं बैठक प्रधानमंत्री जी की अध्यक्षता में दिनांक 6 सितम्बर, 2002 को नई दिल्ली में आयोजित हुई। बैठक में उप प्रधानमंत्री श्री लाल कृष्ण आडवाणी, मानव संसाधन विकास मंत्री डा० मुरली मनोहर जोशी और प्रसारण मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज, संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री श्री प्रमोद महाजन, गृह राज्यमंत्री श्री आई.डी. स्वामी, हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री प्रोफेसर प्रेम कुमार धूमल आदि सहित समिति के गैर सरकारी सदस्यों ने भाग लिया।

अपने प्रारम्भिक संबोधन में प्रधानमंत्री जी ने कहा कि यद्यपि राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में अनेक संस्थाएं जुड़ी हैं परन्तु इस कार्य के लिए केन्द्रीय हिंदी समिति का विशेष महत्व है। उन्होंने कहा कि समिति की 25वीं बैठक में लिए गए निर्णय के अनुसार 2 उपसमितियां गठित हुई थीं, जिन्होंने अपने संस्तुतियां समिति के समक्ष विचार के लिए रखी हैं। उन्होंने कहा कि हिंदी भाषा का सूचना प्रौद्योगिकी के साथ जोड़ने के लिए सर्वदा चिंतन होता रहा है। इस दिशा में राजभाषा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय तथा सूचना प्रौद्योगिकी विभाग कार्रवाई कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि हिंदी को बढ़ावा देने का हमारा उद्देश्य देश की एकता को मजबूत करना है। इसके लिए संघ की राजभाषा हिंदी को समर्थ बनाने और इसका प्रचार-प्रसार करना हमारा संवैधानिक दायित्व है।

समिति के अध्यक्ष माननीय प्रधानमंत्री जी ने अपने उद्बोधन में कहा कि यद्यपि हिंदी का व्यवहार की भाषा के रूप में प्रसार बढ़ रहा है, लोग हिंदी सीख रहे हैं परन्तु अभी भी अंग्रेजी का दबदबा बना हुआ है। हिंदी ने भौगोलिक सीमाएं पार कर ली हैं परन्तु मानसिक सीमाएं पार करनी शेष हैं। उन्होंने कहा कि इस दृष्टि से भी यह समिति विचार करे। उन्हौंन कहा कि दोनों उप समितियों की सिफारिशों पर भी समिति विचार करे और अपने बहुमूल्य सुझाव दें। उन्होंने समिति का कार्य नियमित रूप से चलते रहने पर भी सदस्यों के सुझाव आमंत्रित किए।

समिति ने दोनों उप समितियों की संस्तुतियों पर विचार के पश्चात् सर्वसम्मति से निम्नलिखित निर्णय लिए/प्रस्ताव पारित किए :—

संघ लोक सेवा आयोग द्वारा ली जाने वाली सिविल सेवा परीक्षा में संसद द्वारा पारित राजभाषा संकल्प, 1968 के अनुरूप अंग्रेजी अथवा हिंदी के अनिवार्य प्रश्न-पत्र का विकल्प सन् 2004 से ली जाने वाली परीक्षाओं से उपलब्ध कराए। इस अनिवार्य प्रश्न-पत्र के अंक योग्यता सूची बनाने के लिए नहीं गिने जाएंगे, परन्तु इनमें निर्धारित न्यूनतम अंक प्राप्त करना अनिवार्य होगा।

संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित सभी भर्ती परीक्षाओं में हिंदी और अन्य भारतीय भापाओं का विकल्प उपलब्ध कराने के संबंध में कार्मिक एवं प्रशिक्षण राज्यमंत्री सभी प्रदेशों के मुख्य सचिवों के साथ अगले तीन माह में बैठक कर निर्णय लें।

एन.डी.ए. तथा सी.डी.एस. परीक्षाओं में हिंदी का विकल्प प्रदान करने के लिए कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग शीघ्र अनुवर्ती कार्रवाई करें।

हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के लिए सभी आवश्यक कदम शीघ्रातिशीघ्र उठाए जाएं।

छ: सदस्यों की एक '**कार्य संचालन उप समिति**' का गठन किया जाए जो हर तीन माह में अपनी बैठक में केन्द्रीय हिंदी समिति द्वारा पारित सभी प्रस्तावों/निर्णयों के कार्यान्वियन को सुनिश्चित करेगा। '**कार्य संचालन उप समिति**' की सदस्यता निम्न प्रकार होगी :—

1. श्री विद्यानिवास मिश्र — अध्यक्ष
2. डा. ओ.पी. अग्रवाल
3. डा. पुरूपोत्तम लाल चतुर्वेदी
4. श्री मधुकर राव चौधरी
5. सचिव, माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय —सदस्य सचिव

शिमला में क्षेत्रीय राजभाषा सम्मेलन का आयोजन

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समर हिल, शिमला में दिनांक 26 तथा 27 सितम्बर, 2002 को क्षेत्रीय राजभाषा सम्मेलन का आयोजन किया गया। सम्मेलन की अध्यक्षता राजभाषा विभाग गृह मंत्रालय के संयुक्त सचिव श्री मदन लाल गुप्ता ने की। हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के कुलपति श्री एस.डी. शर्मा इस समारोह के मुख्य अतिथि थे। नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, आगरा के अध्यक्ष श्री बी.आर. कौशिक समारोह में उपस्थित थे।

डा. शर्मा ने अपने ओजपूर्ण संबोधन में कहा कि राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन की दिशा में राजभाषा विभाग अत्यंत उत्कृष्ट कार्य कर रहा है। उन्होंने कहा कि उप प्रधानमंत्री श्री लाल कृष्ण आडवाणी ने स्वयं 14 सितम्बर हिंदी दिवस के अवसर पर राजभाषा विभाग के कार्यों की सराहना की है। डा. शर्मा ने कहा कि इस दिशा में अभी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है ताकि भारत सरकार के सभी कार्यालयों में, विश्वविद्यालयों में और स्कूलों आदि में समस्त कार्य हिंदी में हो और विचारों की अभिव्यक्ति भी हिंदी में ही हो। उन्होंने कहा कि इसे प्राप्त करने के लिए हमें अपनी मानसिकता बदलनी होगी। डा. शर्मा ने कहा कि अंग्रेजी सीखना आज की अनिवार्यता हो सकती है, परन्तु जो भाषा हमारी मिट्टी से जुड़ी हुई है उसका विकास और प्रयोग भी अत्यंत आवश्यक है। उन्होंने कहा कि यह कार्य भारत के प्रत्येक नागरिक का है और इस शुभ कार्य में पूर्ण आहूति देने में हम सब को सहयोग करना चाहिए। उन्होंने महात्मा बुद्ध की सोच का उल्लेख करते हुए कहा कि मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही वह बन जाता है।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, आगरा के अध्यक्ष श्री बी. आर. कौशिक ने कहा कि अंग्रेजी बोलने में कोई विशिष्टता नहीं है। हमें अपने व्यावहारिक कार्यों में जनता की भाषा को प्रयोग में लाना चाहिए। प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह इस दिशा में अपनी जिम्मेदारी निभाए। उनका मानना था कि किसी के दिखाए हुए मार्ग पर नहीं चलने के बजाए हमें स्वयं दीपक बन जाना चाहिए। गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग के संयुक्त सचिव श्री एम.एल. गुप्ता ने समारोह में उपस्थित प्रतिभागियों को संबोधित करते हुए राजभाषा विभाग की विभिन्न गतिविधियों की जानकारी दी और कुलपति श्री एस.डी. शर्मा तथा नराकास अध्यक्ष श्री बी.आर. कौशिक को धन्यवाद ज्ञापित किया। उन्होंने कहा कि राजभाषा विभाग भविष्य में क्षेत्रीय राजभाषा सम्मेलनों और पत्र-पत्रिकाओं की प्रदर्शनी का आयोजन किसी पार्टनर के साथ मिलकर आयोजित करने पर विचार कर रहा है।

सम्मेलन में राजभाषा विभाग द्वारा मंत्रालयों/विभागों/उपक्रमों/राष्ट्रीयकृत बैंकों, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों द्वारा हिंदी में प्रकाशित स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं की प्रदर्शनी लगाई गई। कंप्यूटर और साफ्टवेयर कंपनियों के अलावा इरेडा की प्रदर्शनी का आयोजन भी हुआ जिनका उद्घाटन हिमाचल प्रदेश, शिमला के कुलपति श्री शर्मा ने किया। राजभाषा विभाग द्वारा लगाई गई पत्र-पत्रिकाओं की प्रदर्शनी देखने के लिए सम्मेलन के प्रतिभागियों में अत्यंत उत्साह था।

क्षेत्रीय राजभाषा कार्यान्वयन कार्यालय गाजियाबाद और दिल्ली के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले कार्यालयों को वर्ष 2000-2001 में राजभाषा के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए माननीय कुलपति द्वारा निम्नलिखित कार्यालयों को शील्डें प्रदान कर सम्मानित किया :—

राजभाषा कार्यान्वयन कार्यालय, दिल्ली के कार्य-क्षेत्र में वर्ष 2000-01 के लिए पुरस्कृत कार्यालय

कार्यालय

1. केंद्रीय अभिलेख कार्यालय, भा.ति.सी.पु., मदनगीर नई दिल्ली — प्रथम
2. कार्यालय पुलिस महानिरीक्षक, द्रुत कार्य बल, के.रि.पु. बल, नई दिल्ली — द्वितीय
3. कार्यालय पुलिस उप महानिरीक्षक, द्रुत कार्य बल, के.रि.पु. बल, आर. के. पुरम, नई दिल्ली — तृतीय

उपक्रम

1. नेशनल इन्श्योरेन्स कम्पनी लि०, प्रथम
क्षेत्रीय कार्यालय, नई दिल्ली।
2. इण्डियन आयल कार्पोरेशन, द्वितीय
मथुरा-जालंधर पाईपलाईन, बिजवासन, नई दिल्ली।
3. आवास एवं नगर विकास लि०, तृतीय
क्षेत्रीय कार्यालय, नई दिल्ली।

बैंक

1. सेन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया, प्रथम
क्षेत्रीय कार्यालय-ए दक्षिण, नई दिल्ली।
2. यूनियन बैंक आफ इण्डिया, द्वितीय
नाडल क्षेत्रीय कार्यालय, बंगला साहिब मार्ग, नई दिल्ली

राजभाषा कार्यान्वयन कार्यालय, गाजियाबाद के कार्यक्षेत्र में वर्ष 2000-01 के लिए पुरस्कृत कार्यालय

कार्यालय क क्षेत्र

1. कार्यालय, पुलिस महानिरीक्षक प्रथम
म० सेवा, के.रि.पु.बल, लखनऊ
2. क्षेत्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान केंद्र, द्वितीय
देहरादून
3. केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड, तृतीय
क्षेत्रीय निदेशालय, कानपुर

उपक्रम

1. भारतीय जीवन बीमा निगम, प्रथम
म०का०, हल्द्वानी
2. महाप्रबंधक दूरसंचार, जिला अंबाला द्वितीय
3. दि काटन कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया लि०, तृतीय
कानपुर

बैंक

1. केनरा बैंक, क्षेत्रीय कार्यालय, करनाल प्रथम
2. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, कानपुर द्वितीय
3. भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक, कानपुर तृतीय

कार्यालय ख क्षेत्र

1. 11 वीं वाहिनी, प्रथम
भारतीय तिब्बत सीमा पुलिस बल, लुधियाना (पंजाब)
2. कार्यालय मुख्य आयकर आयुक्त, अमृतसर द्वितीय
3. कार्यालय, आयकर आयुक्त, पटियाला तृतीय

उपक्रम

1. इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लि., प्रथम
मथुरा-जालंधर पाइपलाईन, जालंधर
2. भारतीय कपास निगम लि., भटिन्डा द्वितीय
3. भारतीय जीवन बीमा निगम, म.का., तृतीय
लुधियाना

बैंक

1. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, चण्डीगढ़ प्रथम
2. यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, क्षेत्रीय कार्यालय, द्वितीय
चण्डीगढ़
3. ओरियंटल बैंक ऑफ कामर्स, तृतीय
प्रदेशिक कार्यालय, जालंधर

कार्यालय ग क्षेत्र

1. कार्यालय अपर पुलिस उप महानिरीक्षक, प्रथम
के.रि.पु.बल, बंतलाब, जम्मू
2. 20वीं वाहिनी, भारतीय ति.सी.पु. बल, द्वितीय
मार्फत, 56 सेना डाकघर
3. मुख्य अभियता, तृतीय
सम्पर्क परियोजना द्वारा 56 सेना डाकघर

उपक्रम

1. इण्डियन आयल कार्पोरेशन लि०, प्रथम
(विपणन प्रभाग), ए.एफ.एस., जम्मू
2. कार्यालय मुख्य महाप्रबंधक, दूरसंचार, द्वितीय
ज.क.परि., जम्मू
3. पावर ग्रिड कारपोरेशन ऑफ इंडिया लि०, तृतीय
जम्मू

बैंक

1. राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक, प्रथम
जम्मू
2. भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक, जम्मू द्वितीय
3. केनरा बैंक, शाखा कार्यालय, गांधीनगर, तृतीय
जम्मू

वस्त्र मंत्रालय की हिंदी सलाहकार समिति बैठक

वस्त्र मंत्रालय की हिंदी सलाहकार समिति की 7वीं बैठक, दिनांक 10 अक्तूबर, 2002 को ऑबेरॉय ग्रैंड, कोलकाता में माननीय वस्त्र मंत्री श्री काशीराम राणा की अध्यक्षता में आयोजित की गई। बैठक में माननीय वस्त्र राज्यमंत्री श्री बसन गौड़ा आर. पाटील ने समिति के सदस्यों का स्वागत किया बैठक में संसद सदस्य, गैर सरकारी सदस्य तथा मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी उपस्थित थे। बैठक का समन्वय कार्य पटसन आयुक्त मंत्रालय, कोलकाता द्वारा किया गया। बैठक के प्रारंभ में सभी सदस्यों का स्वागत करते हुए माननीय वस्त्र मंत्री ने वस्त्र मंत्रालय के राजभाषा के प्रगामी प्रयोग के संबंध में मंत्रालय की उपलब्धियों का ब्यौरा दिया तथा सभी सदस्यों से अनुरोध किया कि वे इस क्षेत्र में अपने बहुमूल्य सुझाव दें ताकि मंत्रालय में राजभाषा के प्रयोग को और बढ़ाया जा सके। बैठक की कार्यवाही का संचालन मंत्रालय में संयुक्त सचिव (प्रशासन) श्री सुधीर भार्गव द्वारा किया गया।

सभी सदस्यों ने वस्त्र मंत्रालय की बैठक 'ग' क्षेत्र में स्थित कोलकाता में रखने के लिए माननीय मंत्री महोदय का एक मत से धन्यवाद दिया तथा यह विश्वास व्यक्त किया कि इससे मंत्रालय के अधीनस्थ कार्यालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों पर हिंदी में काम करने के लिए सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। बैठक में मंत्रालय तथा इसके नियंत्रणाधीन सभी कार्यालयों की जून, 2002 को समाप्त हिंदी की तिमाही रिपोर्टों पर विस्तार से चर्चा की गई तथा पाई गई कमियों को दूर करने के लिए उपाय सुझाए गए।

हिंदी दिवस/सप्ताह/पखवाड़ा

गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग के निदेशानुसार और राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा कार्यान्वयन हेतु केन्द्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों/कार्यालयों/उपक्रमों/राष्ट्रीयकृत बैंकों तथा नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों द्वारा 14 सितम्बर, 2002 को हिंदी दिवस समारोह का आयोजन किया गया। कुछ कार्यालयों ने हिंदी सप्ताह और पखवाड़े के दौरान विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन भी किया। कार्यालयों द्वारा राजभाषा हिंदी में सर्वाधिक कार्य करने वाले अधिकारियों और कर्मचारियों को पुरस्कृत भी किया गया। जिन मंत्रालयों/विभागों/कार्यालयों आदि ने इन समारोहों का आयोजन किया, उनका नाम नीचे दिया गया है :—

संसदीय कार्य मंत्रालय, नई दिल्ली

मुख्य आयकर आयुक्त, पटियाला, चण्डीगढ़

केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग, नई दिल्ली, इलाहाबाद, लखनऊ

भारतीय लेखा तथा लेखा परीक्षा विभाग, भगवान दास रोड, जयपुर

सीमासुरक्षा बल महानिदेशालय, नई दिल्ली

मुख्य अभियंता हिमांक परियोजना द्वारा 56 सेना डाकघर

पूर्वी भंडार प्रभार (गृह) द्वारा 59 सेना डाकघर

आकाशवाणी तुरा, यवतमाल, कोलकाता, पणजी, पुणे, नई दिल्ली, बीड, मुंबई, नागौड, नागपुर, अहमदाबाद, कड्डपा, आल्पुशा, डिब्रूगढ़, बीकानेर, वाराणसी, इलाहाबाद, जोधपुर, जगदलपुर, कट्टक

दूरदर्शन केन्द्र नागपुर, नई दिल्ली, जोधपुर

भारतीय सर्वेक्षण केन्द्र, जोधपुर,

महालेखाकार लेखा परीक्षा का कार्यालय, मणिपुर

पूर्वोत्तर रेलवे गोरखपुर, पश्चिम रेलवे मंडल कार्यालय, रतलाम

कर्मचारी राज्य बीमा निगम, इन्दौर, फरीदाबाद, थाने

नेहरू युवा केन्द्र संगठन, नई दिल्ली

राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान, नई दिल्ली

भारी पानी संयंत्र, तूतीकोरिन, केन्द्रीय विद्युत् रसायन अनुसंधान संस्थान,

कारैकुड्डी, केन्द्रीय रोपण फसल अनुसंधान संस्थान, कासरगोड, केरल

प्रधान निदेशक लेखा परीक्षा का कार्यालय, पश्चिम रेलवे, मुंबई

भारतीय संचार निगम लिमिटेड, नई दिल्ली, अहमदनगर, आगरा, मुरादाबाद, नासिक, कटनी, लखनऊ, भोपाल

नेशनल कोलफील्डस लिमिटेड, नागपुर नेशनल हाइड्रोइलैक्ट्रिक पावर कार्पोरेशन लिमिटेड, रंगित नगर (सिक्किम)

नेशनल एल्यूमीनियम कंपनी लिमिटेड, भुवनेश्वर

स्टील अथारिटी आफ इंडिया लि. जवाहर लाल नेहरू रोड, कोलकाता

केन्द्रीय जल एवं विद्युत् अनुसंधानशाला, पुणे

केन्द्रीय वैज्ञानिक उपकरण संगठन, चण्डीगढ़

राष्ट्रीय रसायनिक प्रशोगशाला, पुणे

भौतिक अनुसंधान प्रशोगशाला, अहमदाबाद

इंडियन फार्मर्स फर्टिलाइजर्स कोआपरेटिव लि., कांडला

केन्द्रीय रेशम उत्पादन अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, बहरमपुर

भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण, चैन्ने

भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून

हिंदुस्तान पेट्रोलियम कारपोरेशन लि., मुंबई

सेन्ट्रल काटेज इंडस्ट्रीज कारपोरेशन आफ इंडिया लि. नई दिल्ली

इंडियन आयल कारपोरेशन लि., डिगबोई (असम)

भारतीय जीवन बीमा निगम, वाराणसी

बैंक आफ महाराष्ट्र, पुणे

देना बैंक, अहमदाबाद

विजया बैंक, हैदराबाद, विजयवाड़ा, मंगलूर

केनरा बैंक बेंगलूर, लखनऊ

इलाहाबाद बैंक, इलाहाबाद, मेरठ कैंट, पटना-1

आंध्रा बैंक, काकीनाडा

सेंट्रल बैंक आफ इंडिया, आंचलिक कार्यालय, मुंबई, चण्डीगढ़, दिल्ली

कार्पोरेशन बैंक, लखनऊ, मंगलूर

पंजाब एंड सिंध बैंक, आश्रम चौक, नई दिल्ली

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, कोलकाता, गुवाहाटी

कार्यशालाएं

भारतीय जीवन बीमा निगम, मंडल कार्यालय, वरंगल-506001

दिनांक 9 अगस्त, 2002 को हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्य कार्यालयों के 27 अधिकारियों ने भाग लिया। कार्यशाला में स्टेट बैंक आफ हैदराबाद, वरंगल के उप महाप्रबंधक श्री पी. युगन्धर उद्घाटन समारोह के मुख्य अतिथि थे। मंडल प्रबंधक श्री के. सुधाकर रेड्डी ने कार्यशाला की अध्यक्षता की। श्री युगन्धर ने उद्घाटन भाषण में सभी प्रतिभागियों से अनुरोध किया कि वे अपने दैनिक कार्यों में हिंदी को अपनाएं और इसमें स्वेच्छा से काम करें। श्री रेड्डी ने कहा कि यह हमारा दायित्व बनता है कि हम राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन संबंधी नियमों के अनुसार कार्य करें। प्रतिभागियों को हिंदी पत्राचार, प्रशासनिक शब्दावली आदि के बारे में अभ्यास कराया गया।

भारी पानी संयंत्र, तूतीकोरिन, तमिलनाडु

26 और 27 सितम्बर, 2002 को संयंत्र में 26वीं हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें 19 कर्मचारियों ने भाग लिया। कार्यशाला में तूतीकोरिन नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति के अध्यक्ष श्री तपन कुमार हालदार, संयंत्र के उप महानिदेशक श्री एस. सुन्द्रेशन, वैज्ञानिक अधिकारी श्री विक्रम शर्मा, तूतीकोरिन पत्तन न्यास के श्री एस. एम. शिरोमणि आदि वरिष्ठ अधिकारी उपस्थित थे। उद्घाटन भाषण में श्री हालदार ने कहा कि यह गर्व की बात है कि हम सब भारतीय हैं। भाषा, संस्कृति, रीति-रिवाज, मजहब, तीज-त्यौहार, खान-पान इत्यादि अलग होने के बावजूद भी हम एक डोर में बंधे हुए हैं। इस कार्य को राजभाषा हिंदी ने बखूबी निभाया है। हिंदी हमारे गौरव का प्रतीक है। आज विश्व का कोई ऐसा कोना नहीं बचा है जहां हिंदी बोलने वाला भारतीय न हो। दो दिवसीय कार्यशाला में राजभाषा प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

केन्द्रीय विद्युत रसायन अनुसंधान संस्थान कारैकुडी-630006, तमिलनाडु

दिनांक 14 अगस्त, 2002 को संस्थान में एक दिवसीय हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन संस्थान के निदेशक श्री एम. राघवन ने किया। डॉ. पी. राजरत्तिनम, प्रधान, हिंदी विभाग, राजा कालेज, पुदुक्कोट्टे तथा अमेरिकन कालेज, मदुरै के हिंदी विभागाध्यक्ष श्री एम. वी. सुब्बुरामन ने प्रतिभागियों को संबोधित किया और हिंदी में काम करने के रास्ते में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने के उपाय सुझाए।

इण्डियन ओवरसीज बैंक, अण्णा सालइ, चेन्नई-600002

23 तथा 25 जुलाई, 2002 को केन्द्रीय कार्यालय के उच्च कार्यपालकों और उच्च अधिकारियों के लिए राजभाषा अभिमुखी कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में बैंक के समस्त कार्यपालकों को नामित किया गया, जिसमें महाप्रबंधक, उप महाप्रबंधक, सहायक महाप्रबंधक और मुख्य अतिथि स्तर के अधिकारियों ने भाग लिया। दोनों दिन के कार्यक्रम का उद्घाटन क्रमशः महाप्रबंधक श्री श्याम सुन्दर मदान तथा महाप्रबंधक श्री जयकिशन गुप्ता ने किया।

जल एवं विद्युत परामर्शी सेवाएं

दिनांक 19 जून, 2002 को वाप्कोस के गुड़गांव स्थित कार्यालय परिसर में हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें प्रशासन, वित्त एवं तकनीकी स्कन्धों के कार्मिकों ने भाग लिया। कार्यशाला का उद्घाटन मुख्य प्रबंधक (कार्मिक एवं प्रशासन) श्री एस. के. आहूजा ने किया। प्रबंधक श्री आर. आर. बंसल ने प्रतिभागियों को राजभाषा हिंदी की संवैधानिक स्थिति के बारे में जानकारी दी।

स्टील अथॉरिटी आफ इंडिया लिमिटेड, लोधी रोड, नई दिल्ली

20 जुलाई, 2002 को पूर्वी क्षेत्रीय कार्यालय कोलकाता में निजी सचिवों के लिए एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें 12 प्रतिभागियों ने भाग लिया। प्रतिभागियों को संबोधित करते हुए, क्षेत्रीय प्रबंधक (एफ पी) श्री डी. कोबी ने कहा कि यदि कोई व्यक्ति अपनी इच्छा और भावना से काम करेगा तो मुश्किल से मुश्किल काम को आसानी से कर लेगा। उन्होंने प्रतिभागियों का आवाहन करते हुए कहा कि वे हिंदी को अन्तर्मन से अपनाएं, सीखें और कार्यालय का काम हिंदी में करें। प्रतिभागियों को भाषा वर्तनी और व्याकरण संबंधी जानकारी दी गई और अभ्यास कराया गया।

राष्ट्रीय तिलहन एवं वनस्पति तेल विकास बोर्ड, गुड़गांव, हरियाणा

बोर्ड के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए दिनांक 30 सितम्बर, 2002 को कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन सहायक निदेशक श्री एस. के. पाल ने किया। प्रतिभागियों को संघ की राजभाषा नीति, हिंदी वर्तनी, हिंदी के कामकाज में आने वाली कठिनाइयों के समाधार परक आदि विषयों पर विस्तृत जानकारी दी गई। कार्यशाला में कुल 17 अधिकारियों/कर्मचारियों ने भाग लिया।

विविध

बैंकों के कार्यपालकों के लिए संगोष्ठी का आयोजन

पुणे में दिनांक 24 सितम्बर, 2002 को महाराष्ट्र राज्यस्तरीय बैंकर समिति (राजभाषा) के तत्वाधान में सदस्य बैंकों/वित्तीय संस्थाओं के कार्यपालकों के लिए बैंकिंग विषयों पर हिंदी में एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी का उद्घाटन बैंक आफ महाराष्ट्र के कार्यपालक निदेशक श्री अरुण कुमार एस. राव ने किया।

अपने अध्यक्षीय भाषण में बैंक आफ महाराष्ट्र के कार्यपालक निदेशक श्री अरुण कुमार एस. राव ने कहा कि राजभाषा के मात्रात्मक कार्य का लक्ष्य काफी हद तक पूर्ण हो चुका है और अब राजभाषा के कार्य में गुणात्मक सुधार लाने की आवश्यकता है, यह संगोष्ठी उसी संकल्पना का एक रूप है।

आंध्रा बैंक के महाप्रबंधक श्री योगेश्व कुमार ने ''वर्तमान आर्थिक परिदृश्य में आरित-देयता व जोखिम प्रबंधन'' विषय पर तथा बैंक आफ बड़ोदा के महाप्रबंधक ने ''ग्राहक सेवा को बेहतर बनाने और लाभप्रदता में बढ़ोतरी मे लागत खर्च में कमी के विशेष संदर्भ में मशीनीकरण'' विषय पर अपने आलेख प्रस्तुत किए।

समापन समारोह की अध्यक्षता बैंक आफ महाराष्ट्र के महाप्रबंधक श्री सुकमल चंन्द्र बसु ने की। उन्होंने कहा कि आज की आवश्यकता राजभाषा को राष्ट्रभाषा बनाने की है और कोई आसान काम नहीं है। इसके लिए हम सभी को प्रयास करने होंगे। उन्होंने कहा कि यदि हम प्रयास करें तो आगामी 20 वर्षों में हमारी भी एक राष्ट्रभाषा हो सकती है। हमें अपनी मानसिकता बदलनी होगी कि तकनीकी, बैंकिंग और वैज्ञानिक कार्य हिंदी में नहीं हो सकते। उन्होंने कहा कि ऐसी संगोष्ठियां हिंदी भाषा के माध्यम से बैंकिंग के तकनीकी विषयों पर गम्भीर और सार्थक चर्चा में सहायक सिद्ध होंगी। उन्होंने आशा व्यक्त की कि इस प्रकार की संगोष्ठियों की परम्परा भविष्य में भी बनी रहेगी।

डा. नामवर सिंह सम्मान समारोह

11 अगस्त, 2002 को रमा देवी महिला महाविद्यालय, भवनेश्वर ने ''डा. नामवर सिंह सम्मान समारोह'' का आयोजन किया गया। समारोह में हिंदी और ओड़िया के प्रमुख साहित्यकारों, पत्रकारों, शिक्षाविदों एवं जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के पूर्व छात्रों ने भाग लिया।

डा. नामवर सिंह का परिचय देते हुए हिंदी विभाग के अध्यक्ष डा. गुलाम खान ने कहा कि नामवर जी का जीवन, कर्म और अनुभव—आज किंवदंती बन चुके हैं। उन्होंने कहा कि वे रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और डा. रामविलास शर्मा की परम्परा के वे एकमात्र आलोचक हैं जिन्हें हिंदी आलोचना की दूसरी परम्परा विकसित करने का श्रेय प्राप्त है। इस अवसर पर डा. नामवर सिंह ने कहा कि ओड़िसा की धरती और सागर के प्रति उनका आकर्षण बहुत पुराना है। उन्होंने कहा कि भारतेन्दु हरिश्चंद्र, जयशंकर प्रसाद एवं हिंदी के अन्य बड़े साहित्यकारों के साहित्य में ओड़िसा के प्राकृतिक परिवेश की गूंज सुनी जा सकती है। उन्होंने वैश्वीकरण के इस दौर में विद्यार्थियों को आगे आकर समाज में अपनी महत्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका निभाने का आह्वान किया।

समारोह में महाविद्यालय की छात्राओं, हिंदी तथा ओड़िया के विभिन्न साहित्यकारों—डा. अजय पटनायक, श्री सुमन, श्रीमती प्रतिभा राय, श्रीमती मनोरमा विश्वाल, डा. शंकर लाल पुरोहित, डा. प्रीतीश आचार्य, सिद्धार्थ मानसिंह महापात्र, डा. तारिणी चरण दास, डा. रघुनाथ महापात्र एवं प्रो. राधाकान्त मिश्र जैसे बुद्धिजीवियों ने अपने विचार-विमर्श प्रगट किए और समारोह को जीवन्त बनाया।

राजभाषा तकनीकी सेमिनार

दिनांक 9-7-2002 को शास्त्री भवन, नई दिल्ली में राजभाषा तकनीकी सेमिनार का आयोजन किया गया, जिसके उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता संयुक्त सचिव श्री सत्यप्रिय गुप्ता ने की। सम्मेलन के मुख्य अतिथि श्री नवल किशोर राय, संसद सदस्य और संयोजक संसदीय राजभाषा समिति थे। इस सेमिनार में खान विभाग के अधीनस्थ कार्यालयों के तकनीकी-विदों और राजभाषा अधिकारियों ने भाग लिया।

संयुक्त सचिव श्री एस. पी. गुप्ता ने माननीय अतिथि श्री नवल किशोर राय को गुलदस्ता प्रदान कर उनका स्वागत किया और उसके बाद उनको शाल ओढ़ाकर उनको सम्मानित किया। माननीय अतिथि ने दीप प्रज्वलित करके सेमिनार का

उद्घाटन किया। श्री गुप्ता ने अपने स्वागत भाषण में सम्मेलन में उपस्थित अधिकारियों का ध्यान अन्य बातों के साथ-साथ इस ओर भी आकर्षित किया कि यदि हिंदी में अधिक काम करने का संकल्प किया जाए तो हमारे थोड़े से प्रयास से ही हिंदी के प्रचार-प्रसार में गति आ जाएगी तथा खान विभाग का प्रयास सार्थक हो जाएगा।

सम्मेलन के मुख्य अतिथि श्री नवल किशोर राय ने अपने उद्बोधन में सरकारी कामकाज में हिंदी का प्रगामी प्रयोग बढ़ाने केलिए अधिकारियों और कर्मचारियों को प्रेरित किया। उन्होंने खान विभाग तथा इसके अधीनस्थ कार्यालयों/उपक्रमों में राजभाषा हिंदी की प्रगामी प्रयोग की संतोषजनक स्थिति पर खुशी जाहिर की। उन्होंने वरिष्ठ अधिकारियों का ध्यान कतिपय बिन्दुओं की ओर आकर्षित किया। उन्होंने जोर देते हुए कहा कि आजादी के 55 वर्षों के बाद भी हिंदी, अनुवाद की भाषा है। अनुवाद की बजाय मूल रूप से हिंदी में टिप्पण आलेखन पर जोर दिया जाना चाहिए। उन्होंने बताया कि माननीय प्रधानमंत्री जी ने हाल ही में हिंदी में अच्छा काम करने वाले कर्मचारियों की सेवा पुस्तिकाओं में प्रविष्टि करने के बारे में पत्र लिखा है। इसका अनुपालन किया जाए।

सेमिनार के प्रथम सत्र में भारतीय खान ब्यूरो से पधारे श्री मीरूल, क्षेत्रीय खान नियंत्रक एवं तकनीकी सचिव ने भारत में हीरा खनन, भावी संभावनाएं, श्री एस. आर. मैसारे, अधीक्षक रसायनज्ञ ने खानों के पर्यावरणात्मक प्रबंधन और जे. पी. मिश्रा, वरिष्ठ तकनीकी सहायक ने मैगनीज और इंडिया लिमिटेड की खान के अपशिष्ट ढेर से MNO2 की पुनर्उपलब्धि नामक विषयों पर तकनीकी पेपर प्रस्तुत किए।

श्री हरि सिंह दायमा, हिंदी अधिकारी, भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण, पश्चिमी क्षेत्र, जयपुर ने 'आधार धातु की खोज में वनस्पति का उपयोग' नामक विषय पर तकनीकी पेपर प्रस्तुत किया। इस लेख के लेखक हैं—श्री वी. के. कन्चन, निदेशक (व) भा०भू० सर्वे, जयपुर।

एम. ई.सी.एल. से पधारे मो० मेहरूल हसन ने औद्योगिक विकास में खनिजों का महत्व 'नामक विषय पर अपना तकनीकी पेपर प्रस्तुत किया। उक्त सभी प्रतिभागियों ने अपने-अपने पेपरों की खास बातों पर संक्षेप में प्रकाश भी डाला।

द्वितीय सत्र के दौरान उपस्थित राजभाषा अधिकारियों ने हिंदी के प्रगामी प्रयोग के संबंध में अपने-अपने कार्यालयों में महसूस की जा रही समस्याओं के विस्तृत चर्चा के आधार पर निष्कर्ष निकाले।

राजभाषा सम्मेलन

राजभाषा हिंदी में कार्य करने का वातावरण तैयार करने, उसमें आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों का निवारण करने, कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य करने के संबंध में नवीनतम जानकारी देने और सरकारी कामकाज में हिंदी में सर्वोत्कृष्ट कार्य करने वाले कार्यालयों को पुरस्कृत करने के उद्देश्य से कलकत्ता में दिनांक 9 सितम्बर, 2002 को कलकत्ता नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (उपक्रम) द्वारा पार्क होटल में राजभाषा सम्मेलन का आयोजन किया गया। सचिव, राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) श्री एस. के. टुटेजा समारोह के मुख्य अतिथि थे। स्टील अथारिटी आफ इंडिया के कार्यपालक निदेशक और नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (उपक्रम) के अध्यक्ष श्री सदानन्द पाणीग्रही ने समारोह की अध्यक्षता की। समिति द्वारा हिंदी के प्रचार-प्रसार और संवर्धन के लिए किए जा रहे कार्यों तथा भविष्य की कार्य योजनाओं के बारे में नराकास के अध्यक्ष श्री मोहित मुखर्जी ने विस्तृत विवरण समारोह मे प्रस्तुत किया। इस समारोह में सार्वजनिक उपक्रमों के प्रशासनिक प्रमुखों और राजभाषा अधिकारियों को मिलाकर कुल 198 प्रतिभागियों ने भाग लिया। प्रतिभागियों को संबोधित करते हुए मुख्य अतिथि श्री सुरेन्द्र कुमार टुटेजा, सचिव, राजभाषा विभाग ने बताया कि भारतवर्ष में सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी का व्यापक प्रयोग सदा ही होता आया है। उन्होंने राजभाषा हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए सूचना प्रोद्योगिकी के प्रयोग को अपनाने पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि यह प्रयत्न किया जाना चाहिए कि कंप्यूटर आदि उपकरणों में प्रयोग आने वाले साफ्टवेयर द्विभाषी ही खरीदे जाएं। अध्यक्षीय भाषण में श्री पाणीग्रह ने सरकार की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन की राजभाषा नीति के माध्यम से कार्मिकों के दिल में राजभाषा हिंदी के प्रति रूझान पैदा करने तथा हिंदी में प्रशिक्षण देने की आवश्यकता पर जोर दिया।

हिंदी संपर्क अधिकारियों की वार्षिक संगोष्ठी

दिनांक 26 अगस्त, 2002 को हिंदी संपर्क अधिकारियों की एक वार्षिक संगोष्ठी का आयोजन कारपोरेशन बैंक द्वारा किया गया, जिसमें उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्यों में स्थित शाखाओं के नामित हिंदी संपर्क

अधिकारियों ने भाग लिया। संगोष्ठी का उद्घाटन हिंदी साहित्यकार एवं व्यंग्यकार श्री मुद्राराक्षस ने दीप प्रज्वलित कर किया। भाषा के महत्व को स्पष्ट करते हुए उन्होने कहा मुंह की बात और जिगर की बात में तालमेल न होने के कारण देश में भाषाओं का बंटवारा बढ़ता जा रहा है, क्योंकि मुंह की जुबान गलत हो सकती है, जिगर की बात गलत नहीं हो सकती। उन्होंने कहा कि अनुराग मौलिकता का पर्याय नहीं है। उन्होंने कहा कि वैज्ञानिक, तकनीकी, भौगोलिक आदि क्षेत्रों में मौलिक रचनाएं हिंदी में करने से निश्चित ही हिंदी को बढ़ावा मिलेगा।

संगोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए सहायक महाप्रबंधक श्री एच.एस. सैनी ने कहा कि एक वैज्ञानिक संस्था में काम करने के नाते यदि ग्राहक हिंदी में काम करने से संतुष्ट होते हैं तो हमें हिंदी में अवश्य काम करना चाहिए। श्री सैनी ने कहा कि हिंदी में काम न करना मानसिक अवरोध का परिणाम है।

इलाहाबाद बैंक के वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा), डॉ. गजेन्द्र कुमार तथा कार्पोरेशन बैंक के प्रबंधक श्री अशोक कुमार ओझा ने क्रमशः राजभाषा कार्यान्वयन एवं मार्किटिंग के विभिन्न कार्यों पर सारगर्भित वक्तव्य प्रस्तुत किए।

हिंदी में मूल कार्य करने के लिए पुरस्कार

ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कारपोरेशन लिमिटेड में 1 जून, 2002 से 3 जुलाई, 2002 तक हिंदी में मूल रूप से कार्य करने के लिए अखिल भारतीय प्रतियोगिता आयोजित की गई। प्रतियोगिता का प्रथम पुरस्कार 5000 रु. का, द्वितीय पुरस्कार 3000 रु. का और तृतीय पुरस्कार 2000 रु. का रखा गया।

प्रतियोगिता में सम्मिलित होने के लिए 2 महीने की अवधि के दौरान 'क', 'ख' क्षेत्रों में कम से कम 10 हजार शब्द तथा 'ग' क्षेत्र में कम से कम 5000 शब्द हिन्दी में लिखने की शर्त रखी गई। इस प्रतियोगिता में निम्नलिखित प्रतिभागी विजित हुए :—

1. श्री राम रतन, मुख्य रसानज्ञ, हाजिरा संयंत्र, हाजिरा — प्रथम पुरस्कार
2. श्री के. रविन्द्रनाथ, मुख्य अभियन्ता, (ई.एण्ड टी.) क्षेत्रीय प्रयोगशाला, बड़ोदरा — द्वितीय पुरस्कार
3. श्री संजय कटिहा, उप अधीक्षण अभियन्ता, नाजिरा — तृतीय पुरस्कार

ओ.एन.जी.सी. के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक श्री सुबीर राहा ने 14 अगस्त, 2002 को आयोजित एक भव्य समारोह में उपर्युक्त विजयी प्रतियोगियों को नगद पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र प्रदान किए।

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस समारोह 2002

भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद के देश भर में फैले विभिन्न संस्थानों/केन्द्रों द्वारा 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस' के उपलक्ष्य में दिनांक 28 फरवरी, 2002 को हिंदी माध्यम में विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किए गए। इस अवसर पर लोकप्रिय व्याख्यानों, संगोष्ठियों, दृश्य-श्रव्य कार्यक्रम जैसे अनेक कार्यक्रमों का आयोजन करके इसे हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इस वर्ष राष्ट्रीय विज्ञान दिवस का विषय 'कचरे से सम्पदा' था। परिषद के विभिन्न संस्थानों/केन्द्रों द्वारा आयोजित कार्यक्रमों की झलक निम्नलिखित है।

राष्ट्रीय व्यावसायिक स्वास्थ्य संस्थान, अहमदाबाद

दिनांक 27 फरवरी, 2002 को राष्ट्रीय विज्ञान दिवस का आयोजन किया गया। कचरे से सम्पदा नामक विषय पर व्याख्यान के लिए उद्योग आयुक्तालय, गुजरात सरकार, गांधीनगर के तकनीकी सलाहकार डॉ ए. के. राठी को आमंत्रित किया गया था। समारोह के प्रारम्भ में संस्थान के निदेशक डॉ एच.एन. सैयद ने अपने भाषण में वैज्ञानिक एवं तकनीकी कार्यों में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने पर बल दिया। डॉ राठी ने 'कचरे से सम्पदा' विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उपस्थित श्रोताओं को बताया कि किस प्रकार कचरे का पुनः संशोधित प्रयोग करके सम्पदा प्राप्त की जा सकती है। उन्होंने सरल एवं अर्थपूर्ण हिंदी में अत्यंत रोचक एवं ज्ञानवर्धक व्याख्यान दिया।

राजेन्द्र स्मारक आयुर्विज्ञान अनुसंस्थान, पटना

संस्थान के उपनिदेशक डॉ कमल किशोर ने विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए कार्यक्रम की अध्यक्षता की। मगध विश्वविद्यालय, पटना के ए. एन. कालेज के पर्यावरण विज्ञान विभाग के प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्षा डॉ. बिहारी सिंह को व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया गया था। डॉ० सिंह ने अपने व्याख्यान में विभिन्न प्रकार से उत्पन्न कचरे तथा व्यावहारिक जीवन में उसके उपयोग पर बल

दिया। संस्थान के सहायक निदेशक डॉ प्रभात कुमार सिन्हा ने दैनिक जीवन में कचरे को सम्पति के रूप में कैसे इस्तेमाल किया जाए इस विषय पर प्रकाश डाला। गोबर गैस के प्रयोग से विद्युत उत्पादन पर भी चर्चा की गई। इसके अतिरिक्त, डॉ० सी. एस. लाल, डॉ० दिवाकर सिंह दिनेश जैसे संस्थान के अन्य वैज्ञानिकों ने भी इस विषय पर प्रकाश डाला।

प्रजनन अनुसंधान संस्थान, मुम्बई

25 फरवरी से 28 फरवरी, 2002 को भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.टी.) मुम्बई के अभियांत्रिकी रसायन विभाग के प्राध्यापक डॉ एच.एस. शंकर के व्याख्यान का आयोजन किया गया। डॉ शंकर ने अपने व्याख्यान में उपस्थित श्रोताओं को जैविक मल से पेड़-पौधों के लिए खाद बनाने के तरीकों के विषय में अवगत कराया। उन्होंने जैविक कचरे के सम्पदा के रूप में परिवर्तित करने की अनेक विधियों पर प्रकाश डाला। इन कार्यक्रमों का आयोजन दो शहरी एवं एक ग्रामीण स्कूल में किया गया था। इस अवसर पर छात्रों को प्रजनन अनुसंधान संस्थान की गतिविधियों के साथ-साथ प्रजनन स्वास्थ्य के विषय में भी बताया गया।

केन्द्रीय जालमा कुष्ठरोग संस्थान, आगरा

दिनांक 28 फ़रवरी, 2002 को आयोजित संगोष्ठी के मुख्य अतिथि श्री बी. आर. कौशिक ने कहा कि कर्मठ व्यक्ति अनुपयोगी कचरे को उपयोगी साधनों में बदल सकता है जो मानवता के लिए बहुत आवश्यक है। उपयोग में आने के बाद कुछ अमृत बन जाता है और कचरे की उत्पति भी उसमें विलय हो जाती है। कार्यक्रम में उपस्थित विशिष्ट अतिथि श्री राजाराम, महाप्रबंधक दूरसंचार ने कहा कि समुद्र से प्राप्त कच्ची सामग्री को पेट्रोल और केरोसिन के रूप में परिवर्तित किया जाता है। इसी प्रकार अन्य कचरे का भी सदुपयोग किया जा सकता है। संस्थान के पूर्व निदेशक डॉ० यू. सेन गुप्ता ने कहा कि प्रगति के साथ कचरा भी बढ़ रहा है तथा कचरे के उपयोग में भी अनेक परेशानियां आती हैं, यह एक बहुत उपयोगी विषय है।

राष्ट्रीय एड्स अनुसांधन संस्थान, पुणे

दिनांक 28 फरवरी, 2002 को संस्थान के प्रभारी अधिकारी डॉ. रमेश परांजपे ने कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए 'कचरे से सम्पदा' नामक विषय पर विस्तृत जानकारी दी। उन्होंने राष्ट्रीय विज्ञान दिवस के महत्व पर चर्चा करते हुए संस्थान के प्राथमिकता वाले क्षेत्रों की गतिविधियों पर प्रकाश डाला। कार्यक्रम के संचालक श्री राजेश यादव ने राष्ट्रभाषा हिंदी के महत्त्व पर बल दिया। उनके धन्यवाद ज्ञापन के साथ समारोह का समापन हुआ।

राष्ट्रीय विषाणु विज्ञान संस्थान, पुणे

दिनांक 28 फरवरी, 2002 को पुणे विश्वविद्यालय के पर्यावरण शास्त्र विभाग के प्रमुख डॉ विक्रम धोले ने 'आवांछित व्यर्थ पदार्थों को अनियोजित ढंग से व्यसन के कारण वनस्पतियों एवं प्राणियों में बदलाव' में कहा कि पर्यावरण शब्द जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक तथा जैविक परिस्थितियों का योग है। प्रकृति में जो कुछ भी उपलब्ध है। जैसे वायु, मृदा, पाइप तथा प्राणि सभी सम्मिलित रूप से पर्यावरण को संतुलित करने के लिए आवश्यक घटक हैं। परन्तु आज इन सभी घटकों के दूषित होने के कारण वायुमंडल पर्यावरण प्रदूषण की विकराल समस्या से जूझ रहा है। उन्होंने बताया कि वनों की अनियंत्रित कटाई से प्राकृतिक संतुलन बिगड़ रहा है। मानव द्वारा अपशिष्ट पदार्थों के भंडारण एवं फेकने का स्थान जल होता है।

'ताना बाना' प्रवेषांक का विमोचन

विकास आयुक्त (हथकरघा) कार्यालय, नई दिल्ली की छमाही हिंदी पत्रिका 'ताना बाना' के प्रवेषांक का विमोचन माननीय वस्त्र मंत्री श्री काशीराम राणा ने दिनांक 3 अक्टूबर, 2002 को नई दिल्ली में किया। इस अवसर पर माननीय वस्त्र राज्य मंत्री श्री बसन गौड़ा आर पाटील सहित विकास आयुक्त (हथकरघा) सहित पत्रिका से जुड़े सभी अधिकारियों को बधाई दी तथा कहा कि इस तरह के प्रकाशनों से अधिकारियों तथा कर्मचारियों को अपनी अभिव्यक्ति तथा सृजनशीलता के लिए एक मंच मिलता है और अपने दफ्तर के कामकाज में हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए उन्हें प्रेरणा मिलती है। उन्होंने आशा व्यक्त की कि भविष्य में इस तरह के प्रयासों को जारी रखा जाएगा।

MGIPRRND—3841 HA/02—2000 Copies.

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला में 26–27 सितम्बर, 2002 को आयोजित क्षेत्रीय राजभाषा सम्मेलन का दीप प्रज्जवलित कर उद्‌घाटन करते हुए राजभाषा विभाग के संयुक्त सचिव श्री मदन लाल गुप्ता।

सम्मेलन में मंचासीन हैं (बाएं से) निदेशक (तकनीकी) श्री विनोद कुमार श्रीवास्तव, निदेशक (नीति) श्री बृजमोहन सिंह नेगी, संयुक्त सचिव श्री मदन लाल गुप्ता। हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला के कुलपति श्री एस.डी. शर्मा, नराकास आगरा के अध्यक्ष श्री बी.आर. कौशिक तथा केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो के निदेशक श्री विचारदास।

पं. सं. 3246/77

आई एस एस एन 0970-9398

प्रपत्र-4 (देखिए नियम-8)

प्रैस तथा पुस्तक पंजीकरण अधिनियम

समाचार-पत्रों का पंजीकरण (केन्द्रीय) नियम

'राजभाषा भारती' के स्वामित्व तथा विवरणों की सूचना

1.	प्रकाशन स्थान	लोकनायक भवन, नई दिल्ली-110003.
2.	प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
3.	मुद्रक का नाम	प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, मायापुरी, नई दिल्ली
4.	क्या भारत का नागरिक है ?	भारतीय नागरिक
5.	प्रकाशक का नाम व पता	सुरेन्द्र लाल मल्होत्रा, उप संपादक, राजभाषा विभाग, भारत सरकार, लोकनायक भवन, नई दिल्ली-110003 दूरभाष : 24698054
6.	क्या भारत का नागरिक है ?	भारतीय नागरिक
7.	सम्पादक (पदेन) का नाम व पता	कृष्ण चंद्र श्रीवास्तव, निदेशक (अनुसंधान) राजभाषा विभाग, लोकनायक भवन, नई दिल्ली-110003 दूरभाष : 24617807
8.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	

मैं, सुरेन्द्र लाल मल्होत्रा एतद्द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवम् विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

ह०/-

प्रकाशक का हस्ताक्षर

भारत सरकार राजभाषा विभाग, (गृह मंत्रालय), लोकनायक भवन, नई दिल्ली-110003 के लिए सुरेन्द्र लाल मल्होत्रा, उप सम्पादक द्वारा प्रकाशित तथा प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, मायापुरी, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।